* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य ८ रुपये

श्रीभरतजीद्वारा श्रीरामचरणपादुकाओंका पूजन

चारों युगोंमें भगवान् विष्णुका स्वरूप

सत्ययुगके भगवान्का ध्यान

त्रेतायुगके भगवान्का ध्यान

द्वापरके भगवान्का ध्यान

कलियुगके भगवान्का ध्यान

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

शान्ता महान्तो निवसन्ति सन्तो वसन्तवल्लोकहितं चरन्तः।
तीर्णाः स्वयं भीमभवार्णवं जनानहेतुनान्यानपि तारयन्तः॥

वर्ष ८९

गोरखपुर, सौर वैशाख, वि० सं० २०७२, श्रीकृष्ण-सं० ५२४१, अप्रैल २०१५ ई०

संख्या ४

पूर्ण संख्या १०६१

चारों युगोंमें भगवान् विष्णुका ध्यान

कृते शुक्लश्चतुर्बाहुर्जटिलो वल्कलाम्बरः।
कृष्णाजिनोपवीताक्षान् बिभ्रद् दण्डकमण्डलू॥

सत्ययुगमें भगवान्का श्वेत वर्ण होता है, वे चार भुजाएँ, सिरपर जटा, वल्कल वस्त्र, काले मृगका चर्म, यज्ञोपवीत, रुद्राक्षकी माला, दण्ड और कमण्डलु धारण करते हैं।

त्रेतायां रक्तवर्णोऽसौ चतुर्बाहुस्त्रिमेखलः।
हिरण्यकेशस्त्रय्यात्मा स्रुक्स्रुवाद्युपलक्षणः॥

त्रेतायुगमें उन भगवान्का रंग लाल होता है, वे चार भुजाएँ धारण करते हैं। उनके केश सुनहले होते हैं और वे वेदप्रतिपादित यज्ञके रूपमें रहकर स्रुक्, स्रुवा आदि यज्ञपात्रोंको धारण करते हैं।

द्वापरे भगवाञ्छ्यामः पीतवासा निजायुधः।
श्रीवत्सादिभिरङ्कैश्च लक्षणैरुपलक्षितः॥

हे राजन्! द्वापरयुगमें भगवान्का रंग साँवला होता है। वे पीताम्बर और शंख, चक्र आदि आयुध धारण करते हैं। वक्षःस्थलपर श्रीवत्स आदि चिह्नों और अनेक लक्षणोंसे वे पहचाने जाते हैं।

कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम्।
यज्ञैः सङ्कीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः॥

कलियुगमें काले रंगकी कान्तिसे, अंगों और उपांगों; अस्त्रों एवं पार्षदोंसे युक्त श्रीकृष्णकी श्रेष्ठ बुद्धिसम्पन्न पुरुष यज्ञोंके द्वारा और प्रधान रूपसे नाम-कीर्तन आदिके द्वारा आराधना करते हैं। [**श्रीमद्भागवत, एकादश स्कन्ध**]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,१५,०००)

कल्याण, सौर वैशाख, वि० सं० २०७२, श्रीकृष्ण-सं० ५२४१, अप्रैल २०१५ ई०

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१- चारों युगोंमें भगवान् विष्णुका ध्यान	३
२- कल्याण	५
३- सेवा, जप, ध्यान, प्रेम तथा व्याकुलता (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	६
४- संसार-जय (पं० श्रीरामदयालजी मजूमदार, एम०ए०)	१०
५- पतनोन्मुख मानव-समाजकी रक्षा कैसे हो ? (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	१२
६- उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् (डॉ० श्रीशिवेन्द्रप्रसादजी गर्ग, 'सुमन')	१६
७- दूसरोंकी निन्दा किसी हालतमें न करो	१८
८- साधकोंके प्रति— (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	१९
९- 'भावे हि विद्यते देव:' (दण्डी स्वामी श्रीमहेश्वरानन्दजी सरस्वती)	२२
१०- सन्त-उद्बोधन (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)	२४
११- साधन-सूत्र (आचार्य श्रीगोविन्दरामजी शर्मा)	२५
१२- वृद्धजनोंके प्रति युवाओंका कर्तव्य (श्रीइन्द्रमलजी राठी)	२७
१३- सबमें आत्मभाव	२८
१४- हमारी प्राचीन वैमानिक-कला (श्रीदामोदरजी झा, साहित्याचार्य)	२९
१५- एक पलके सत्संगसे प्रभुप्राप्ति (डॉ० श्रीभीकमचन्दजी प्रजापति)	३२
१६- समाजकी सेवा [कहानी] (श्री 'चक्र')	३६
१७- साधनोपयोगी पत्र	४१
१८- आवरणचित्र-परिचय	४२
१९- व्रतोत्सव पर्व [ज्येष्ठमासके व्रत-पर्व]	४३
२०- कृपानुभूति	४४
२१- पढ़ो, समझो और करो	४५
२२- मनन करने योग्य	४८
२३- पूर्ण गोहत्या-बन्दीकी दिशामें महाराष्ट्रका एक कदम (—राधेश्याम खेमका)	५०

चित्र-सूची

१- श्रीभरतजीद्वारा श्रीरामचरणपादुकाओंका पूजन .... (रंगीन) .... आवरण-पृष्ठ
२- चारों युगोंमें भगवान् विष्णुका स्वरूप .... (,,) .... मुख-पृष्ठ
३- क्षमाशील संत .... (इकरंगा) १६
४- युधिष्ठिर और यक्ष .... (,,) १७
५- मन्थरा और कैकेयी .... (,,) २५

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क
अजिल्द ₹ २००
सजिल्द ₹ २२०

पंचवर्षीय शुल्क
अजिल्द ₹ १०००
सजिल्द ₹ ११००

विदेशमें Air Mail सजिल्द शुल्क — **वार्षिक** US$ 45 (₹ 2700), **पंचवर्षीय** US$ 225 (₹ 13500) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**
आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**
सम्पादक—**राधेश्याम खेमका**, सहसम्पादक—**डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़**
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **www.gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | ✆ **(0551) 2334721**

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।**
Online सदस्यता-शुल्क भुगतानहेतु gitapress.org पर **Online Magazine Subscription** option को click करें।
अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर नि:शुल्क पढ़ें।

कल्याण

याद रखो—तुमसे कोई बुरा बर्ताव करे तो उसके साथ भी अच्छा बर्ताव करो और ऐसा करके अभिमान न करो। दूसरेकी भलाईमें तुम जितना ही अपने अहंकार और जागतिक स्वार्थको भूलोगे, उतना ही अधिक तुम्हारा वास्तविक हित होगा।

सबके साथ सहानुभूति और नम्रतासे युक्त मित्रताका बर्ताव करो। संसारमें अधिक मनुष्य ऐसे ही मिलेंगे, जिनकी कठिनाइयाँ, जिनके कष्ट तुम्हारी कल्पनासे कहीं अधिक हैं। तुम इस बातको समझ लो और किसीके साथ भी अनादर और द्वेषका व्यवहार न करके विशेष प्रेमका व्यवहार करो।

यह बात याद रखनेकी है कि भगवान्के राज्यमें भलाईका फल बुराई कभी हो नहीं सकता। इसी तरह बुराईका फल भलाई नहीं होता। तुम्हारे साथ यदि कोई बुरा बर्ताव करता है और तुम भी यदि उसके साथ वैसा ही बर्ताव करोगे तो इससे यही सिद्ध होगा कि तुम्हारे अन्दर कोई ऐसा दोष भरा है, जो यह चाहता है कि लोग तुमसे द्वेष करें और तुमको सतायें।

ऐसा न होता तो तुम अच्छा बर्ताव करते और उसके बदलेमें भगवान्के न्यायसे अब नहीं तो कुछ दिनों बाद तुम्हें अच्छा बर्ताव मिलता ही। अच्छे बर्तावके फलस्वरूप आपके हृदयमें अच्छाईका भरना तो अनिवार्य ही है।

अच्छा बर्ताव—निश्छल प्रेमका व्यवहार करके सबमें भलाईका—प्रेमका वितरण करो। यही सच्ची सहायता और सच्चा आश्वासन है। आप जैसा व्यवहार करेंगे, वैसा ही जगत्को देंगे और वैसा ही आप पायेंगे भी।

सभीको प्रेमभरी मधुरता और सहानुभूतिभरी आँखोंसे देखें। सुखी जीवनके लिये प्रेम ही असली खूराक है। संसार इसीकी भूखसे मर रहा है। अतएव प्रेम-वितरण करो—अपने हृदयके प्रेमको हृदयमें ही मत छिपा रखो; उसे उदारताके साथ बाँटो। इससे जगत्का बहुत-सा दुःख दूर हो जायगा।

याद रखो—जिसके बर्तावमें प्रेमयुक्त सहानुभूति नहीं है, वह मनुष्य जगत्में भाररूप है और जिसके हृदयमें स्वार्थ-युक्त द्वेष है, वह तो जगत्के लिये अभिशापरूप है। हृदयमें विशुद्ध प्रेमको जगाओ, उसे बढ़ाओ और सब ओर उसका प्रवाह बहा दो। तुमको अलौकिक सुख-शान्ति मिलेगी और तुम्हारे निमित्तसे जगत्में भी सुख-शान्तिका प्रवाह बहने लगेगा। वस्तुतः प्रेम ईश्वरका स्वरूप है।

आप जो कुछ बोयेंगे, वही अनन्तगुना होकर वापस मिलेगा। बीजके अनुसार ही फल होते हैं। भलाईके बीज बोनेसे भलाईके फलोंसे तमाम खेत हरा-भरा हो जायगा। वह आपको भी मिलेगा और जगत् भी उसे पाकर सन्तुष्ट होगा। द्वेष और वैरसे मनुष्य जैसे जगत्को नरक बना देता है, वैसे ही सहानुभूति और प्रेमसे उसे स्वर्गसे भी बढ़कर बना सकता है।

याद रखो—जो केवल अपना ही स्वार्थ देखते हैं और जिनका 'अपना' बहुत ही सीमित होता है, वे बड़े संकुचित मनवाले होते हैं और उनसे भला व्यवहार नहीं हो पाता। जिनका 'अपना' विस्तृत हो गया है, जो सारे जगत्में 'अपनेपन' का अनुभव करते हैं, वे गन्दे स्वार्थके वशमें होकर जगत्का अहित नहीं कर सकते। उनका स्वार्थ ही परमार्थ होता है।

मनुष्यमें ज्यों-ज्यों प्रेमका विस्तार होता है, त्यों-ही-त्यों उसके 'स्व' का दायरा भी बढ़ता जाता है। बढ़ते-बढ़ते वह सारे विश्वमें छा जाता है। फिर विश्व-कल्याणमें ही उसे अपना 'कल्याण' दीखता है। यही प्रेमका शुद्ध रूप है।

'शिव'

सेवा, जप, ध्यान, प्रेम तथा व्याकुलता

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

शास्त्रोंमें निष्काम सेवासे और निष्काम भावसे भगवान्से प्रार्थना करके भगवान्के मिलनेके उपाय बतलाये गये हैं। जो आदमी स्वार्थ छोड़कर सेवा करे और सेवाकी भीख माँगे, प्रार्थना करे कि 'हमें सेवा करनेका अवसर दो' इसमें इतना स्वार्थ नहीं है, जितना स्वार्थ भगवान्के दर्शन माँगनेमें है। यदि कोई मुझसे कहे कि आप भगवान्का दर्शन करवा दें तो इसमें उसका स्वार्थ है; क्योंकि वह मुफ्तमें दर्शन करना चाहता है। दर्शन करानेवालेने तो उसकी सेवा की। हमें किसीकी सेवा करनेका अवसर मिले तो ऐसा अवसर देनेवाला हमारा उपकार करता है। सेवा करनेमें परिश्रम भी होता है, इसलिये मुफ्तमें दर्शनकी अपेक्षा सेवामें निष्काम भाव ज्यादा है। इन भावोंमें तत्त्व भरा हुआ है। लोगोंके मनमें अन्धकार छाया हुआ है। उन्हें दीखता है कि यह बहुत भला आदमी है, भगवान्के दर्शनके लिये कह रहा है। ठीक है, वह तो भगवान्के दर्शनके लिये कह रहा है और दूसरा सेवा माँग रहा है। यदि कोई मुझसे आकर कहता है कि 'आप भगवान्का दर्शन करवा दें' उसकी अपेक्षा सेवाका काम चाहनेवाला मुझे ज्यादा अच्छा लगता है।

इसमें विचार करनेकी बात है—पहलेवालेमें दो दोष आते हैं—एक तो स्वार्थका दोष आता है; क्योंकि उसे भगवान्का दर्शन मुफ्तमें चाहिये और दूसरा यह कि वह कहता है कि मुझे भगवान्का दर्शन करवा दें। उसमें श्रद्धा ही नहीं है। भगवान्के दर्शन करना चाहता ही नहीं। यदि कोई कहता है कि भगवान्के दर्शनकी इच्छा करनी और सेवा करनेकी इच्छा करनी—इन दोनोंमें भगवान्की इच्छा करनी बड़ी चीज है तो उसने सेवाके तत्त्वको जाना ही नहीं; क्योंकि वह भगवान्के दर्शन बिना भजन किये मुफ्तमें करना चाहता है। जो भजनको बेगार समझते हैं, भजन करनेको परिश्रम समझते हैं, उनको भगवान्का मिलना कठिन है। भगवान्के भजनमें श्रद्धा और रुचि न रहनेके कारण जो भजन करते ही नहीं हैं, उनमें वास्तवमें आस्तिकता ही नहीं है। जो भजन करता है, पर उसे परिश्रम मालूम देता है तो समझना चाहिये कि भजनमें उसकी श्रद्धा और प्रेम गौण है, उसे याद ही कम आता है। याद आनेपर वह करने भी लग जाता है, किंतु उसमें उसे कोई परिश्रम नहीं मालूम देता, विशेष आनन्द भी नहीं आता। वह समझता है कि थोड़े ही भजनसे भगवान् मिल जायँ तो बहुत अच्छी बात है। उसका वह भजन महत्त्वपूर्ण नहीं है; क्योंकि ईश्वरमें उसकी प्रीति, रुचि और श्रद्धा सामान्य है।

जिसे भजन प्रिय लगता है, वह उसे छोड़ना नहीं चाहता। यदि भूल जाता है और भूलनेपर उसे पश्चात्ताप होता है तो ऐसी स्थितिमें समझना चाहिये कि उसकी भजनमें श्रद्धा और रुचि कुछ विशेष है। भजन करनेवालेको भजन करते समय शान्ति और प्रसन्नता मालूम देती है और वह यह चाहता है कि मेरा भजन सदा बना रहे, फिर भी कभी-कभी भूल हो जाती है। इस अवस्थामें भजनमें और भगवान्में प्रीति, रुचि और श्रद्धा मुख्य है। इससे भी बढ़कर बात यह है कि उससे भजन छूटता ही नहीं और छूटनेसे बड़ी भारी व्याकुलता हो जाती है। वह भूलको बर्दाश्त नहीं कर सकता और बहुत ही दुःखित-सा हो जाता है। इस दशामें उसकी भगवान्में श्रद्धा, रुचि और प्रीति विशेष समझी जाती है अथवा यह कह सकते हैं कि तीव्र समझी जाती है या अनन्यकी तरह समझी जाती है। इससे भी जो बढ़कर है, वहाँ तो भूल हो ही नहीं सकती। वह तो भगवान्से भी बढ़कर भगवान्के भजन और ध्यानको समझता है। एक तरफ भगवान् मिलना चाहते हैं और दूसरी तरफ भजन-ध्यान छोड़ना पड़ता है तो उसका यह भाव रहता है कि 'मैं भजन-ध्यान नहीं छोड़ सकता, भगवान् चाहे मिलें या न मिलें।' उसकी भगवान्में रुचि, प्रीति और

श्रद्धा तीव्रतर है। इससे भी बढ़कर वह साधक है, जो भगवान्‌के जप और ध्यानको छोड़ नहीं सकता, प्राणोंका त्याग कर सकता है। भजन-ध्यानका वियोग असह्य है, पर प्राणोंको त्यागना सह्य है। जब उस साधकसे एक क्षण भी ढील बर्दाश्त नहीं हो पाती तो उसी समय भगवान्‌को प्रकट होना पड़ता है; क्योंकि उसकी रुचि, प्रीति और श्रद्धा तीव्रतम है। जिस समय भजन-ध्यानके विषयमें तीव्रतम इच्छा हो जाती है या उसे तीव्रतम स्मृति होने लग जाती है फिर भगवान् उससे मिले बिना नहीं रह सकते, क्षणमें मिल सकते हैं। परमात्माकी प्राप्तिके लिये सबसे बढ़कर अन्तिम क्षण वही है, जिस क्षणमें इतनी व्याकुलता हो जाय, प्राण जानेकी तैयारी हो जाय। भगवान्‌की विस्मृति तो हो ही नहीं सकती। भगवान्‌के विस्मरणमें परम व्याकुलता ही नहीं, बल्कि वह भगवान्‌के भजन, चिन्तन, स्मरण और ध्यानके बिना जी ही नहीं सकता; क्योंकि भजन, ध्यान तथा स्मरण ही उसका जीवन है, प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय है। जैसे श्वास स्वाभाविक चलता रहे तो कष्ट नहीं होता, श्वासको रोकनेमें कष्ट होता है। इसी प्रकार श्वासकी तरह स्वाभाविक ही भगवान्‌का भजन-ध्यान होता है, करना नहीं पड़ता। वह भगवान्‌के भजन-ध्यानको भगवान्‌से भी बढ़कर समझता है, उसके लिये भगवान् रुक नहीं सकते, क्षणमात्रमें भगवान् प्रकट हो जाते हैं।

हमलोग प्रायः भगवान्‌के नामका जप करते हैं, भगवान्‌के स्वरूपका ध्यान करते हैं, वह महत्त्वपूर्ण नहीं है। ध्यान तो प्रायः होता ही नहीं, किंतु भगवान्‌के नामका जप बेगारकी तरह करते हैं, किसी-किसीको तो परिश्रम-सा प्रतीत होता है और कोई तो जैसे औषधका सेवन रुचिसे नहीं करता, पर बाध्य होकर औषधका सेवन करना पड़ता है, उसी प्रकार बाध्य होकर भगवान्‌का भजन करता है। वास्तवमें वह भजन ही नहीं है, जप ही नहीं है। हम यदि अपने जन्म-मरणकी बीमारीको मिटाने तथा पापोंका नाश करनेके लिये भगवान्‌का जप-भजन करते हैं तो भगवान्‌में प्रेम-श्रद्धा इत्यादि गौण है। फिर भी भगवान्‌का भजन-ध्यान और भगवान्‌के नामका जप तो भगवान्‌की प्राप्ति करवानेकी सामर्थ्य रखता है। इसलिये भगवान्‌में प्रेम तथा भगवान्‌की प्राप्तिके उद्देश्यसे भजन, ध्यान, जप करना चाहिये। 'भजन' शब्द व्यापक अर्थमें है। कीर्तनको तथा नाम-जपको भजन कहते हैं। हमलोग हरिके गुण गाया करते हैं, जिसे 'हरियश' कहते हैं, उसे भी भजन कहते हैं।

जपके लिये भी युक्ति है। प्रथम तो हमलोग युक्ति जानते ही नहीं। युक्तिसे बढ़कर भाव है, जिससे जप अपने-आप ही महत्त्वपूर्ण होने लग जाता है। एक तो हम जपको महत्त्वपूर्ण बनाते हैं और एक जप अपने-आप स्वयं महत्त्वपूर्ण बन जाता है। अपने लोगोंकी जपको महत्त्वपूर्ण बनानेकी क्रिया बहुत ही शिथिल है। हमलोग जप उच्चारण करके करते हैं, पर उससे वह जप बढ़िया है, जिसमें मन-ही-मन करते हैं, दूसरेको सुनायी नहीं देता, किंतु ओठ हिलते दीखते हैं। हमारी जिह्वा भी हिलती है, ओठ भी हिलते हैं और बहुत धीरे-धीरे हमें सुनायी देता है, किंतु दूसरे आदमियोंको सुनायी नहीं देता। हमारे बहुत नजदीकमें यदि कोई कान लगाकर देखे तो शायद उसे सुनायी दे भी सकता है, उसे 'उपांशु जप' कहते हैं। उससे भी वह जप श्रेष्ठ है, जिसमें ओठ भी नहीं हिलते, भीतर-ही-भीतर केवल जिह्वासे ही जप होता रहता है और उससे भी वह श्रेष्ठ है, जो जप हमारे कण्ठसे होता है, प्राणोंसे, श्वाससे सम्बन्ध रखता है। श्वासके आवागमनद्वारा जपका अभ्यास जिह्वाके जपके अभ्याससे भी और ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। इससे भी बढ़कर मानसिक जप है।

मानसिक जपके भी कई प्रकार हैं। एक तो जब हम सो जाते हैं तो खूब गौर करनेपर कानमें घड़ीके खटकेके समान तथा नाड़ीकी चालके अनुसार वह शब्द सुनायी देता है और उसके साथ हम नामका सम्बन्ध जोड़ते हैं यानी 'राम' या 'शिव' और जो अपने इष्टदेव हैं, उनके नामका इसके साथ सम्बन्ध जोड़ देते हैं। अब

जितनी बार शब्द सुनता है, उतनी ही बार उसके साथ भगवान्‌के नामका सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। आगे जाकर उसे भगवन्नामकी ध्वनि प्रत्यक्ष प्रतीत होने लगती है। इस प्रकार जप मनसे ही सम्बन्ध रखता है। मन यदि नहीं रहेगा तो नाम सुनेगा ही नहीं। इसी प्रकार नाड़ीके द्वारा जप होता है। योगशास्त्रमें बतलाया गया है कि सुषुम्ना नाड़ी हृदयसे लेकर मस्तकतक है। हृदयमें एकाग्र होकर ध्यान करनेसे वह नाड़ी चलती दीखती है। मस्तक, भृकुटि तथा कण्ठमें भी विशेष ध्यान देनेसे वह नाड़ी दिखायी देती है। उसकी चाल तेज करनेसे वह स्पष्टरूपसे दीखने लग जाती है। यह भी एक प्रकारसे मानसिक जप है। जैसे कोई 'राम'-नामका उपासक है, वह 'रा' और 'म' को दीवालपर लिखकर अपने मनसे उसे बार-बार पढ़ रहा है, 'रा' और 'म' को मनसे देख रहा है, भगवान्‌के नामका स्मरण कर रहा है, मनसे नामका चिन्तन कर रहा है तो यह भी मानसिक जप है। जो अपने उपास्य देव हैं—जैसे कोई भगवान् रामका ही ध्यान करता है, रामके नामका ही जप करता है, भगवान् रामके ललाटपर या भगवान् रामके मुकुटपर चन्दनसे भगवान्‌का नाम लिखकर उसे देखता रहता है। यह और भी बढ़कर है।

जो निराकारका उपासक है, साकारका उपासक नहीं है, उसके द्वारा भगवान्‌के निराकार-वाचक नामों—जैसे **'ॐ, तत्, सत्' 'अनन्त', 'राम'** आदिका स्मरण मनके संकल्पसे होता है। जैसे मनमें बहुत-सी बातें याद आती रहती हैं, उनका संकल्प होता है, उन्हें वाणीसे थोड़े ही बोल सकता है। श्वासोंसे थोड़े ही इस प्रकारसे कहता है कि मनमें इसकी स्मृति होती है, चिन्तन होता है, याद आती है। इस तरह भगवान्‌के नामकी जो बार-बार स्मृति होती रहती है, यह मानसिक स्मरण है। इस प्रकार मानसिक स्मरण करके जो न किसीसे कहता है, न किसीको जनाता है, न संकेत करता है, न यह बात दिखलाता है, गुप्त-भावसे करता है, यह और भी उत्तम है। इस प्रकार गुप्त भावसे नाम-स्मरण करता हुआ नामके साथ-साथ नामीको भी याद कर लेता है। जैसे भगवान् रामके साकार रूपका उपासक भगवान् रामके मुखारविन्दके ऊपर, गालके ऊपर, मस्तकके ऊपर, ललाटके ऊपर, कानोंके पास—चारों तरफ सब जगह भगवान्‌का नाम लिखकर भगवान् रामको साथ-साथ देखता रहता है, नामका जप भी मनसे करता रहता है और भगवान्‌के मुखारविन्दको भी देखता रहता है। इस प्रकार ये दोनों बातें एक साथ हो रही हैं। जप भी हो रहा है, ध्यान भी हो रहा है। जैसे भगवान् रामके मुखारविन्दपर चन्दनसे 'राम-राम' अंकित है, उसे वह स्वयं याद कर रहा है, मनसे स्मरण कर रहा है और मुखारविन्दको भी देख रहा है। उसका यह भाव है कि भगवान् नेत्र ढकते हैं, उनसे भी भगवान्‌के नामका उच्चारण होता है और खोलते तथा बन्द करते समय भी भगवान्‌के नामका उच्चारण होता है, मानो भगवान्‌की आँखें भी 'राम-राम' का उच्चारण कर रही हैं। जैसे मुख खिल गया तो उस समय 'रा' का उच्चारण हुआ और मुख बन्द हुआ तो उसमेंसे 'म' का उच्चारण हुआ यानी मुख भी 'राम-राम' उच्चारण कर रहा है। भगवान् बोलते हैं या हँसते हैं तो भगवान्‌के नामका उच्चारण हो रहा है। जैसे हँसनेके समय मुख खिल गया तो मानो 'रा' उच्चारण हुआ और वापस बन्द करके मुसकरा रहे हैं तो 'म' उच्चारण हुआ। इस प्रकार जप और ध्यान दोनों साथ हो रहे हैं। यदि कोई निराकारका उपासक है तो वह इस प्रकार समझे—अपने शरीरमें प्रत्येक नाड़ी स्वाभाविक ही चल रही है, उनके साथ जपका सम्बन्ध जोड़ देना चाहिये। समझना चाहिये कि उससे स्वाभाविक ही जप हो रहा है और इसका मनसे अनुभव हो रहा है। यह भी मानसिक जप है।

देह में जितने रोम हैं, उनमें प्रसन्नता भर गयी है, इसलिये वे खिल गये हैं, मानो रोम-रोमसे राम-नामका उच्चारण हो रहा है, चित्तमें प्रसन्नता हो रही है। भगवान्‌की कृपासे मानो रोम-रोमसे भगवान्‌के नामका जप हो रहा है। रोमांच होता है, रोम खुलते हैं तो ऐसी

प्रतीति होती है, मानो रोम-रोमसे राम-राम हो रहा है। मनमें ऐसा प्रतीत होना उच्चकोटिका मानसिक जप है। ऐसा जप करके गुप्त रखना ज्यादा महत्त्वकी चीज है। इसमें रुचि और प्रीति दोनों साथ लगी हुई हैं। श्रद्धा और विश्वास—ये दोनों इसमें हैं ही। क्योंकि बिना श्रद्धा और विश्वासके ऐसा होना भी सम्भव नहीं है। बिना प्रेमके भी सम्भव नहीं है। अतः यहाँ यह कहना भी नहीं बनता कि अगर श्रद्धा और प्रेमसे किया जाय तो दर्जा और भी ऊँचा हो सकता है। ऐसा श्रद्धा और प्रेमसे ही होता है। जब श्रद्धा, प्रेम, रुचि और प्रीतिसे ऐसी स्थिति हो जाती है तब उसे इतनी प्रसन्नता और शान्ति होती है कि जिसकी कोई सीमा नहीं। यह प्रसन्नता और शान्ति श्रद्धा और प्रेमके कारण ही होती है। यह उच्चकोटिका जप है। इसमें भी जबतक उसमें कर्तापनका भाव है तबतक कमी है, उससे भी वह ज्यादा महत्त्वपूर्ण है जिस कर्तामें कर्तापनका भाव नहीं, क्योंकि उससे स्वाभाविक ही होता है। जो स्वाभाविक ही होता है, वह ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। इस प्रकारका जप जब स्वाभाविक ही नित्य-निरन्तर होने लग जाता है, एक क्षण भी उसमें भूल नहीं होती, एकतार जप होने लग जाता है तो जपके प्रभावसे ही भगवान् प्रकट हो जाते हैं; क्योंकि उसके जपके साथ-साथ रूपकी भी स्मृति है ही। चाहे साकारका उपासक हो या निराकारका, जो इस जपमें दिलचस्पी लेता है, रसास्वाद लेता है, आनन्दका अनुभव करता है, वह पुरुष भगवान्‌के दर्शनोंकी अपेक्षा इस प्रेमपूर्वक भगवान्‌के स्वतः होनेवाले नाम-जपको ज्यादा महत्त्वपूर्ण समझता है और वह यही चाहता है कि ऐसा जप निरन्तर बना रहे।

चाहना क्यों होती है? निरन्तरतामें कमी होनेसे। जब निरन्तरतामें कमी नहीं रहती तो यह चाहना भी कैसे बने, वह तो हो ही रहा है। जबतक वह कर्ता है तबतक उसमें चाहना होती है; क्योंकि वह मनसे करता है। अर्थात् जबतक कर्तापना है तबतक इच्छा है। यह इच्छा भी बड़ी उच्चकोटिकी इच्छा है, यह इच्छा कोई दोष नहीं है। आगे जाकर यह इच्छा भी नहीं रहती। जब इस प्रकारसे होने ही लग जाता है तब उसमें भूल होती ही नहीं, नित्य-निरन्तर ही होने लग जाता है, फिर यह इच्छा क्यों रहे? इच्छा अभावमें होती है या भयमें होती है कि यह छूट न जाय। वहाँ भय भी नहीं, कोई अभाव भी नहीं, अतः इच्छा होनेका भी कोई कारण नहीं। जब भगवान् सम्मुख खड़े हैं फिर भगवान्‌के मिलनेकी इच्छा नहीं रहती; क्योंकि जब भगवान् मिल ही रहे हैं फिर मिलनेकी इच्छा रहनेका कोई कारण ही नहीं, बल्कि उस जगह यह शंका रहती है कि कहीं भगवान् अदृश्य न हो जायँ, छिप न जायँ। तब यह इच्छा होती है कि ऐसे ही बने रहें। जिसका यह भाव है, जिन भगवान्‌के नाम-स्मरणसे प्रत्यक्षमें ऐसा आनन्द हो रहा है यह उससे कैसे छूट सकता है, छूटनेका कोई कारण ही नहीं। भगवान् अपनेको दर्शन दे रहे हैं, देते-देते अन्तर्धान हो सकते हैं, वह हमारे वशकी बात नहीं, किंतु हमसे जो जप हो रहा है, वह उसी तरह नहीं छूट सकता जैसे श्वास बन्द होनेपर हम जी नहीं सकते। यह तो हमारा जीवन है, हमारे प्राणोंसे भी बढ़कर है। जिनको भगवान्‌का भजन प्राणोंसे भी बढ़कर प्रतीत होता है वह प्राणोंका तो त्याग कर सकता है किंतु भगवान्‌के नाम-स्मरणका त्याग नहीं कर सकता। इसी प्रकार विरहकी व्याकुलतामें भी ऐसी बात हुआ करती है। विरहकी व्याकुलता यानी भगवान्‌के वियोगकी व्याकुलतामें ध्यान प्रधान है। पहली पद्धतिमें जप भी है, ध्यान भी है और विरहमें भी जप एवं ध्यान दोनों है, पर पहलेमें तो जप होते-होते ध्यान होता है, इसलिये नाम-जपकी प्रधानता है, लेकिन विरहमें ध्यानके बलसे भगवान्‌का नाम भी याद रहता है। नामका जप करते-करते ध्यान होने लग जाय तो ध्यान होनेके बाद विरहकी व्याकुलता भी हो सकती है। सबके लिये अलग-अलग तरीका है, एक ही बात नहीं है। [**क्रमशः**]

संसार-जय

(पं० श्रीरामदयालजी मजूमदार, एम०ए०)

अन्दर जो कामना है, बाहर वही संसार है—कामनाकी जो मूर्ति बाहर प्रकट है, वही संसार है। जो कामनापर विजय पा सकते हैं, भोगेच्छाका त्याग कर सकते हैं, स्वयं त्यागकर दूसरोंको त्यागकी शिक्षा दे सकते हैं, वे ही संसार-जयी पुरुष हैं।

भीष्मदेव संसार-जयी पुरुष थे। 'पिता धर्म है, पिता स्वर्ग है, पिता ही परम तप है, पिताको सन्तुष्ट करनेसे सब देवता प्रसन्न होते हैं।' शास्त्रने यही शिक्षा दी है, परंतु आज ऐसे कितने मनुष्य हैं, जो इस शिक्षाके अनुसार कार्य करते हैं? भगवान्-भगवान् बहुत लोग करते हैं, परंतु उनमें बहुतेरे पितृद्रोही, मातृद्रोही और गुरुद्रोही होते हैं, यदि भगवान्‌को साथ रखकर कहीं घर करना पड़ता तो वे भगवद्द्रोही भी हो जाते! ऐसे लोग भगवान्‌को कहाँ पायेंगे? ये क्या साधन करेंगे? चरित्रवान् या चरित्रवती हुए बिना क्या भगवान् मिलते हैं? जो मनुष्य अपने पिता-माताके लिये भी अपना जरा-सा सुख नहीं त्याग सकता—भोगको नहीं छोड़ सकता, उसमें चरित्र कहाँ है? ऐसी प्रकृतिके मनुष्य, जो पिता-माता आदि गुरुजनोंके कड़े व्यवहारको मानकर नहीं चलते, साधनमार्गपर चलनेयोग्य नहीं हैं। इनका साधन करना दम्भ होता है। इन्हें पहले सीखना चाहिये—संसारमें तितिक्षु होना, बड़े आनन्दसे दूसरेके सुखके लिये अपनी भोगेच्छाका त्याग करना। ऐसा करनेपर फिर भगवान्‌के मार्गपर चलना सहज हो जायगा। संसारको जीतनेकी कला सीखे बिना भगवान्‌के समीप नहीं पहुँचा जाता।

भीष्मदेव संसारपर विजय पा सके थे। पिताके सन्तोषके लिये उन्होंने जीवनभर स्त्रीका ग्रहण नहीं किया। पिताकी बात तो दूर—पिता जिसकी कन्यासे विवाह करना चाहते थे, उसके सामने राज्यत्याग और आजीवन स्त्रीत्यागकी प्रतिज्ञा किये बिना पिताका अभिलाष पूर्ण नहीं होगा, ऐसा समझकर भीष्मदेवने हँसते-हँसते जीवनभरके लिये कामिनी और कांचनका सर्वथा त्याग कर दिया। वे ही सच्चे संसार-जयी थे। भीष्मदेव विरक्त होकर संसारसे भागे नहीं, बल्कि विमाताके पुत्रको सिंहासनपर बैठाकर स्वयं उसके रक्षक बनकर रहे। यही सच्ची विजय है!

भीष्मदेव हमारे आदर्श हैं। इस संसार-जयी महापुरुषने मृत्युको भी जीत लिया था। ईसामसीहका क्रॉससे बिंध जाना अवश्य ही प्रशंसाकी बात है। परंतु भीष्मदेव हजारों तेज धारवाले बाणोंसे बिंधे होनेपर भी अविचलित थे। इच्छामृत्यु होनेपर भी हजारों तीरोंको शरीरमें बिंधे रखकर ही उन्होंने धर्मका उपदेश किया था और आनन्दके साथ उत्तरायणतक जीवनको रखा था। इस ऐतिहासिक सत्यको असम्भव मानकर इसे कहानी कहकर उड़ा देनेसे काम नहीं चलता। आज इसपर विश्वास नहीं होता, इसमें हमारी मूढ़ बुद्धि ही कारण है। जब पहले-पहल रेल-तार चले थे तब ग्रामीण किसानोंको उनपर विश्वास नहीं हुआ था। आज हम चरित्रबल, धर्मबल, तपोबल आदिके सम्बन्धमें सर्वथा अज्ञानी हैं। निरक्षर, ग्रामीण किसानकी अपेक्षा भी हमारी अवस्था गयी-गुजरी है। इसीसे हमें विश्वास नहीं होता, परंतु इससे भीष्म काल्पनिक नहीं हो जाते। इसीलिये हमने कहा था कि पितामह संसार-जयी पुरुष थे।

सर्वांगीण संसार-जयके आदर्श हैं भगवान् श्रीराम।

धर्ममार्गं चरित्रेण ज्ञानमार्गं च नामतः।
तथा ध्यानेन वैराग्यमैश्वर्यं यस्य पूजनात्॥

यही श्रीभगवान्‌की महिमा है। अभिषेककी तैयारी हो गयी है। प्रातःकाल राजा होंगे। बहुत दूर-दूरसे लाखों नर-नारी अभिषेकके लिये आये हैं। सब कुछ तैयार है, ऐसे समय श्रीभगवान् राज्य छोड़कर वनको चले जाते हैं—पिताके सत्यकी रक्षाके लिये! श्रीभगवान्‌ने पिताके चरित्रपर विचार नहीं किया। बल्कि जिन्होंने पिताके चरित्रपर विचार करके उसमें दोष दिखलाया, उन्हें यह समझा दिया कि पिताका दोष ही नहीं हो सकता—पिताका दोष देखनेसे पुत्रका पुत्रत्व ही नहीं रहता।

पिताने किस प्रकारसे, किसके सामने, किस अवस्थामें दानकी बात स्वीकार की थी। प्रभुके मनमें इसका विचार ही नहीं आया। पिता किसी भी प्रकारसे, किसी भी अवस्थामें आज्ञा क्यों न दें, उनकी आज्ञाको बिना विचार पालन करना चाहिये। यही चरित्र है। इसीका नाम

संसार-जय है। यही सत्यता है। पितामें दोष देखना तो असभ्यता—बर्बरता है। 'पिता भगवान् हैं, पिताका दोष हो ही नहीं सकता। मैं अभागा शैतानके जालमें फँसकर पिताकी बातें नहीं मानता हूँ।' जिसका हृदय इस प्रकार कहता है, वह एक दिन संसार-विजयी हो सकता है!

एक बात और! वनगमनके समय पिताने प्रभुको रोकना चाहा। प्रभुने विचार किया और विचार करके कहा—आप इस समय जो कुछ कह रहे हैं, यह स्नेह है। स्नेहमें पड़कर मनुष्यको सत्यका त्याग करके असत्यका ग्रहण नहीं करना चाहिये। यह भारतके असाधारण धर्मका फल है। साधारण धर्म दूसरे देशोंमें है। पर असाधारण धर्म तो भारतमें ही है। इस धर्मका कोई अंश यदि अन्यत्र देखा जाता है तो वह इस देशसे आनेकी ही सूचनामात्र है। इस देशके जीवोंका कर्मसूत्रमें बँधकर वासनावश अन्य देशोंमें जन्म हो गया है। इसीसे पूर्वसंस्कारवश ये किसी अंशमें इस देशका व्यवहार कर बैठते हैं।

श्रीभगवान्ने एक और भी कठिन लीला की थी। उन्होंने कलंकशून्या, निरपराधा सहधर्मिणीको भी त्याग दिया था। कंचनका त्याग ठीक है, कामिनीका ग्रहण न करना भी ठीक है। परंतु ग्रहण करके, पूर्णरूपसे उसे पवित्र जानकर और रमणीयताकी साक्षात् मूर्ति देखकर भी 'स्वामिगतप्राणा', 'समचित्त-स्पन्दनवती' का परित्याग कर देना और कहीं नहीं है! श्रीभगवान्ने देवीका त्याग क्यों किया? राजाका कर्तव्य पालन करनेके लिये? यह कर्तव्य प्रजारंजन है। प्रजाके लिये सारे सुखोंका विसर्जन कर देना ही राजधर्म है। आश्रितके लिये अपने सुखकी कामनाका त्याग ही पूर्णमात्रामें संसार-जय है।

प्रजा अज्ञानी हो सकती है—आश्रितजन मूर्ख हो सकते हैं—परंतु राजा यदि अज्ञानी मूर्ख आश्रितोंको क्षमा करके उनके दोषोंको न सुधार सके तो राजधर्म कैसे रह सकता है? इस प्रकारके कार्योंसे राजाको महान् क्लेश होगा। अपने प्रधान स्वार्थका त्याग करना पड़ेगा। परंतु राजा यदि ऐसा नहीं करे तो उसकी प्रजाका, उसके आश्रितोंका अपने अज्ञानवश और भी मन मैला होगा—उनका अज्ञान और भी बढ़ जायगा और उनके अज्ञानसे राज्य पापसे भर जायगा। इसलिये राजा अपने किसी भी दुःखकी परवा न करके प्रजाका उपकार ही करता है। श्रीभगवान्ने जनकनन्दिनीका त्याग किया। कहा जा सकता है कि प्रजाके अज्ञानके कारण राजा ने महारानीके साथ अविचार किया। बिना ही अपराधके उसका त्याग कर दिया। हम कहते हैं, यह त्याग त्याग नहीं था, यह थी प्रतिष्ठा। यही संसार-जय है।

स्थूल देहको आँखोंसे अलग करना ही क्या त्याग है? सूक्ष्मभावसे सीताका निरन्तर मनोराज्यमें स्थापन कर लेना उसका त्याग है या स्थापना? सीताको त्यागकर भगवान्ने जितना दुःख सहा, उतना दुःख क्या सीताको हुआ था? 'रे रे दाहिने हाथ! तूने सीताका त्याग कर दिया था' श्रीभगवान्की इस कातरोक्तिमें त्यागकी बात है या चिरस्थापनाकी? अश्वमेधयज्ञमें सीताकी स्वर्णमयी मूर्तिको वामभागमें स्थापन करके यह यज्ञ सम्पादन करना त्याग है या स्थापना? जगत्के हितके लिये जो स्थूलका त्याग करके सूक्ष्मकी स्थापना कर सकते हैं, वे ही यथार्थ संसार-जयी हैं और जो संसार-जयी है, वही पुरुष संयमी है।

श्रीभगवान्ने स्वयं आचरण करके जो आदर्श दिखलाया, वैसा और कहाँ है? ऐसा संसार-जय और कौन दिखा सकता है? आओ-आओ, इस आदर्शका अनुकरण करनेके लिये हम प्राणप्रण करें। पिता, माता, गुरु, स्वजनोंके लिये हम संसार-जय करें। कर्तव्यके लिये आदर्शको अक्षुण्ण रखकर मनुष्य बनें!

कर्तव्यके सामने अपनी कामनाकी चरितार्थता? प्रेमके सामने कामका कदर्य कार्य? तुम्हारे जरा-से सुख-त्यागसे यदि परिवारका मंगल होता है, समाजका कल्याण होता है, जातिका, चरित्रका और धर्मका महत्त्व प्रतिष्ठित होता है तब क्या स्वार्थरूप पशुत्वका विसर्जन कर देना उचित नहीं है? अपना आहार, निद्रा, भय और मैथुन ही तो पशुत्व है। स्वयं पशुत्वको जय करके—दूसरेको पशुत्वके जय करनेकी शिक्षा देना क्या कर्तव्य नहीं है? पशुत्वको त्यागकर देवत्वके ग्रहणके लिये प्राणोंकी बाजी लगा देना ही क्या बुद्धिमान् पुरुषके जीवनका उद्देश्य नहीं होना चाहिये? पशुत्व-जयकी चेष्टाको क्या संसार-जय नहीं कहा जा सकता?

पतनोन्मुख मानव-समाजकी रक्षा कैसे हो ?

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

पाप और पुण्यकी सीधी-सी परिभाषा यह है कि जिस भावना या क्रियासे परिणाममें अपना तथा दूसरोंका अहित होता हो, वह पाप है और जिस भावना या क्रियासे परिणाममें अपना तथा दूसरोंका हित होता हो, वह पुण्य है। जिससे दूसरोंका हित नहीं होता, उससे अपना हित कदापि नहीं होगा और जिससे दूसरोंका हित होता है, उससे अपना कभी अहित नहीं होगा—यह सिद्धान्त निश्चयरूपसे मान लेना चाहिये। हमारा वास्तविक हित दूसरोंके हितमें ही समाया है। जो मनुष्य ऐसा मानते हैं कि हम दूसरोंका अहित करके या दूसरोंके हितकी उपेक्षा करके अपना हित करते हैं या कर लेंगे, वे वस्तुतः बड़े मूर्ख हैं। वे अपना हित कभी कर ही नहीं पाते। यह मान्यता ही भ्रम है कि दूसरोंके हितकी उपेक्षा या उनका अहित करनेसे हमारा हित हो जायगा। यथार्थमें वे मनुष्य बड़े ही अभागे हैं, जो दूसरोंके अहितमें अपना हित और दूसरोंके दु:खमें अपना सुख समझते हैं। ऐसे मनुष्य ही असुर-मानव हैं, जिनका जीवन दूसरोंकी बुराईमें ही लगा रहता है। वे दूसरोंकी बुराई करने जाकर अपनी ही बुराई करते हैं।

संसारमें साधारणतया नौ प्रकारके मनुष्य होते हैं—

(१) जो दूसरोंके हितमें ही अपना हित समझते हैं, अतएव जीवनभर प्रत्येक क्रिया दूसरोंके हितके लिये ही करते हैं। अपना नुकसान करके भी दूसरोंको लाभ पहुँचाया करते हैं।

(२) जो दूसरोंके हितको प्रमुख मानते हैं और अपने हितको गौण, अत: जहाँ दूसरोंका हित होता हो, वहाँ अपने हितकी चिन्ता छोड़ देते हैं।

(३) जो दूसरोंका हित चाहते हैं—करते हैं, परंतु अपना नुकसान सहकर या अपने हितकी चिन्ता छोड़कर नहीं।

(४) जो दूसरोंका हित तो चाहते हैं और करते भी हैं, परंतु वहीं चाहते-करते हैं, जहाँ अपना भी लाभ समझते हैं, नहीं तो—नहीं करते। अर्थात् अपने लाभके लिये ही दूसरोंका हित करते हैं।

(५) जो केवल अपना ही हित देखते हैं, दूसरोंके हितका विचार ही नहीं करते।

(६) जो अपने हितके लिये दूसरोंके हितकी जान-बूझकर उपेक्षा करते हैं।

(७) जो अपने हितके लिये दूसरोंका अहित सोचते हैं और करनेमें नहीं हिचकते।

(८) जो अपनेको बचाकर दूसरोंका अहित ही करना चाहते हैं और दिन-रात उसीमें लगे रहते हैं।

(९) जो अपना अहित करके भी दूसरोंका अहित करनेमें लगे रहते हैं। इन नौमें प्रथम सर्वश्रेष्ठ हैं और नवम सबसे नीच—अधम।

प्रथम वस्तुतः दूसरोंको पर मानते ही नहीं। वे तो सबको अपना स्वरूप ही मानकर सबके सुख-दु:खमें स्वयं सुख-दु:खका अनुभव करते हैं, उनका 'स्व' अखिल जगत्के प्राणियोंमें प्रसरित होकर पवित्र हो जाता है। ऐसे ही लोगोंके लिये श्रीभगवान्‌ने भगवद्गीतामें कहा है—

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दु:खं स योगी परमो मतः॥

(६।३२)

'अर्जुन! जो अपने ही समान सम्पूर्ण प्राणियोंमें समदृष्टि रखता है और सबके सुख या दु:खको भी समतासे देखता है, वह योगी परम श्रेष्ठ माना गया है।' वस्तुतः उसके अनुभवमें सर्वत्र एक आत्मा ही रह जाता है। वह किसी भी वर्ग, वर्ण, जाति, पद, देश, धन, सम्प्रदाय आदिके भेदसे आत्मामें भेद नहीं मानता। भेदोंमें रहते हुए ही वह अभेदभावसे सबका वैसे ही हित चाहता और करता है, जैसे मनुष्य अपने मस्तक, हाथ, पैर और नीचेकी इन्द्रियों आदिके व्यवहारमें भेद मानता तथा बरतता हुआ भी उनमें समान आत्मभाव रखता और

उनका सहज ही हित चाहता तथा करता है। ऐसे सबमें 'स्व' की अनुभूति करनेवालेका 'स्वार्थ' पवित्र हो जाता है; क्योंकि सबका स्वार्थ ही उसका स्वार्थ बन जाता है, सबका हित ही उसका हित बन जाता है और सबका सुख ही उसका सुख हो जाता है। वह केवल एक छोटे-से समाजमें ही नहीं, समस्त विश्वमें आत्मीयताका अनुभव करता हुआ कभी किसीका अहित तो करता ही नहीं, किसीको दुःख तो पहुँचाता ही नहीं, उनके हितकी या सुखकी अवहेलना या उपेक्षा भी नहीं कर सकता। वह निरन्तर सहज ही 'सर्वभूतहित' में रत रहता है। भगवान्ने ज्ञानी साधकके लिये कहा है—

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम्॥
संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः॥

(गीता १२। ३-४)

'जो पुरुष अपनी सारी इन्द्रियोंको भलीभाँति नियन्त्रणमें रखते हैं, समस्त प्राणियोंके हितमें रत रहते हैं और सबमें समबुद्धि रखते हैं, वे अचिन्त्य, सर्वव्यापी, अनिर्देश्य, कूटस्थ, नित्य, अचल, अव्यक्त, अक्षर ब्रह्मकी उपासना करते हुए मुझको (भगवान्को) प्राप्त होते हैं।'

जो सर्वत्र एक परम तत्त्वका दर्शन करते हैं, वे इन्द्रियसुखकी इच्छा कैसे करेंगे, उनकी इन्द्रियाँ सहज ही भोग-सुखोंसे हटी रहेंगी। सबमें सहज ही उनकी समबुद्धि होगी और सबका हित ही उनका सहज कर्म होगा।

भक्तके लिये तो भक्तोंकी स्वरूप-व्याख्याके आरम्भमें ही भगवान् कहते हैं—

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी॥
संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥

(गीता १२। १३-१४)

'जो समस्त प्राणियोंमें द्वेषभावसे रहित, सबका निःस्वार्थ प्रेमी, सहज ही करुणहृदय, ममता और अहंकारसे रहित, सुख-दुःखकी प्राप्तिमें सम, क्षमाशील (अपराध करनेवालेका मंगल चाहनेवाला), निरन्तर लाभ-हानिकी प्रत्येक स्थितिमें सन्तुष्ट, मन-इन्द्रिय-शरीरको वशमें रखनेवाला दृढ़निश्चयी पुरुष है, वह मुझमें (भगवान्में) मन-बुद्धिको अर्पण कर चुका हुआ मेरा भक्त मुझे बड़ा प्रिय है।'

ऐसा भक्त अपने इन्द्रिय-सुख या अपने किसी पृथक् सुखके लिये कैसे प्रयत्न करेगा? उसे तो इसकी कामना ही नहीं होगी। सबका सुख ही उसका सुख होगा।

वस्तुतः विश्वमें जब इस प्रकारके आदर्श ज्ञानी या भक्तोंका समाज बनेगा, तभी यहाँ यथार्थ सुख-शान्ति होगी। आजका समाज तो सचमुच बहुत गिर गया है या गिर रहा है, जिसमें ऐसे व्यक्ति भरे हैं, जो इन्द्रियोंके गुलाम हैं, मनके दास हैं, दिन-रात मौज-शौक-विलासमें रहना चाहते हैं, अपने इन्द्रिय-सुखके लिये दूसरोंके दुःख या अहितकी परवा ही नहीं करते, अपनेको ही सुखी बनानेकी धुनमें सदा लगे रहते हैं और इसके लिये दूसरोंका प्रत्यक्ष अहित करते रहते हैं। इस स्थितिको मिटानेके लिये भगवान्के आदर्श वाक्योंके अनुसार एक नवीन विश्वका निर्माण होना चाहिये, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति उपर्युक्त ज्ञानी या भक्तके आदर्श जीवनसे सम्पन्न हो। यह तभी होगा, जब मानव दूसरोंको ऐसा बनानेकी चिन्ता न करके पहले स्वयं ऐसा बनना चाहेगा और इसके लिये पूरा प्रयत्न करेगा। आजका मानव दिन-रात गला फाड़कर और कलम चलाकर दूसरोंको उपदेश करता है, पद-पदपर उनकी भूलें बताकर उन्हें भूल सुधारनेका आदेश देता है, पर स्वयं न अपनी भूलोंको देखता है और न उन्हें सुधारनेका ही प्रयत्न करता है। स्वयं दिन-रात आसुरी-सम्पदाके सेवनमें लगा रहकर ही जगत्को देव बनानेकी बातें किया करता है, इससे दम्भ बढ़नेके सिवा और कुछ नहीं होता। सच कहा जाय तो आजका मानव उन्नत नहीं

हो रहा है—भले वह विज्ञानमें तथा अर्थपैशाचिकतामें ऊँचा चढ़ गया हो—बल्कि अपने आदर्श मानवीय गुणोंकी—जो उसे देवता बनानेमें समर्थ हैं—अवहेलना करके दिनोंदिन असुरत्वकी ओर—पतनकी ओर जा रहा है।

इसीसे उपर्युक्त नवम प्रकारके मनुष्य भी आज मानव-समाजमें उत्पन्न हो गये हैं, जो अपना नुकसान करके भी, अपना अहित करके भी दूसरोंको नुकसान पहुँचाने या दूसरोंका अहित करनेमें ही सुखका अनुभव करते हैं। ऐसे नराधम जगत्का अकल्याण ही करते हैं।

जो लोग अपना वास्तविक हित चाहते हैं और यथार्थमें अपना, देशका या विश्वका सुधार या उद्धार चाहते हैं, उनके लिये यह परम आवश्यक है कि वे दूसरोंको अपना समझें और उनके हितमें ही अपना हित समझकर कार्य करें। ऐसा होनेपर जीवनमें संयम, सदाचार, सेवा आदि सद्‌गुण अपने-आप ही आ जायँगे।

आजकल एक नया रोग फैला है—'जीवनके स्तरको, रहन-सहनको ऊँचा उठाओ।' त्याग, तपस्या, संयम, सादगी, सेवा, सदाचार, मितव्ययिता आदिमें नहीं; भोग, उच्छृङ्खलता, यथेच्छाचार, विलासिता, आरामतलबी, अनाचार, फजूलखर्ची आदिमें। इसका आदर्श है—अनावश्यक आवश्यकताओंको बढ़ाते रहो। अधिक-से-अधिक वस्तुओंका उपयोग करो, मौज-शौककी चीजें बरतनेकी आदत डालो, हाथ-पैरसे कामकाज न करो, श्रम करनेमें अपमान समझो, सिनेमा-रेडियो आदिसे आनन्द लूटो, जीवनको भोगमय या इन्द्रियोंका गुलाम बना लो। फिर इन बढ़ी हुई आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये जीवनका सारा समय तथा सारी विवेक-बुद्धिको लगाते रहो।

गमछा पहनकर कुएँपर या नदीमें नहा आये तो नीचा स्तर और गुशलखानेमें टट्टीदानके बगलमें ही टबमें नंगे होकर नहाये तो ऊँचा स्तर।

शौच जाकर मिट्टीसे हाथ धोये तो नीचा स्तर, चर्बी-मिले साबुनसे हाथ धोये या न धोये तो ऊँचा स्तर।

पहननेके लिये एक जोड़ी जूता रखा तो नीचा स्तर और दसों जोड़े जूते—भोजनका, शयनकक्षका, टेनिसका, फुटबॉलका, दिनका, रातका, ऑफिसका, क्लबका, पार्टीका अलग-अलग—मानो मोचीकी दूकान लगी हो तो ऊँचा स्तर।

जमीनपर आसनपर बैठे और हाथसे भोजन किया तो नीचा स्तर और टेबलपर चम्मच, छूरे, काँटेसे खाया तो ऊँचा स्तर।

शुद्धताके साथ परसा हुआ भोजन किया तो नीचा स्तर, दूसरोंकी जूठन खायी, एक ही जूठे चम्मचसे ले-लेकर खाया तो ऊँचा स्तर।

घरमें रेडियो न रखा तो नीचा स्तर, रखा तो ऊँचा स्तर।

सप्ताहमें एक बार भी सिनेमा न देखा तो नीचा स्तर, रोज-रोज गये तो ऊँचा स्तर।

पाठ-सन्ध्या-पूजा की, तिलकादि लगाया तो नीचा स्तर, उठते ही बिस्तरपर चाय पी, सिगरेटसे धुआँ फेंका और अखबार पढ़ा तो ऊँचा स्तर।

स्त्रियाँ देशी चन्दन-कर्पूरादि पदार्थोंका लेप करें, देशी तेल, इत्र लगायें, बिन्दी-सिन्दूर लगायें, मेंहदी-आलताका प्रयोग करें तो नीचा स्तर, विदेशी पेस्ट-पाउडर, स्नो-क्रीम, नखराग (नेल-पालिश), अधरराग (लिपस्टिक), बालोंके लोशन, बालोंको घुँघराले बनानेवाले थियोग्लार कोल एसिड आदिका उपयोग करें तो ऊँचा स्तर।

इस ऊँचे स्तरके निर्माणमें मिथ्या अभिमान, फैशन, विलासिता, बाहरी दिखावा, बेहद खर्च, समयका नाश और इन्द्रियोंका दासत्व कितना बढ़ जाता है, साथ ही शारीरिक रोग भी कितने बढ़ते हैं, इसका जरा भी ध्यान न करके हमलोग आज नकली आवश्यकताओंको बढ़ाते जाते हैं। हमारे छात्र-छात्राओंमें यह रोग बहुत तेजीसे बढ़ रहा है, जो देशके लिये अत्यन्त घातक है। विलासी तथा अनावश्यक खर्च करनेवाला आदमी न समाज या लोकहितकी बात सोच सकता है, न कर सकता है। उसका समय तथा साधन तो सारा अपनी अनावश्यक

आवश्यकताओंकी पूर्तिमें ही लग जाता है। अतएव हमें ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि हमारी इन नकली आवश्यकताओंका नियन्त्रण हो, फैशनकी इच्छा तथा बाहरी दिखावेका मोह छूटे और हमारा जीवन पवित्र, संयमपूर्ण तथा सादा-सीधा हो।

विलासिता, फैशन तथा बाहरी आडम्बरमें फँसे हुए मनुष्यकी बुद्धि तमसाच्छन्न हो जाती है, मनपरसे उसका नियन्त्रण उठ जाता है। वह पराये हितकी तो बात दूर रही, अपने हितकी बात भी नहीं सोच सकता। इसीसे अन्याय, अधर्म, चोरी, ठगीसे धन कमाकर वह अपनी आवश्यकताओंकी पूर्तिके प्रयत्नमें लगा रहता है और फैशनकी जिस किसी चीजको देखता है, उसीका संग्रह करनेके लिये लालायित रहता है। ऐसे स्त्री-पुरुष सदा खर्चसे तंग रहते हैं, रोते हैं, पर अपनी बुरी आदतको नहीं छोड़ते। पैसेकी बहुत छूट न होनेपर भी फैशनकी चीजोंका अनावश्यक संग्रह करना चाहते हैं और करते हैं। उचित बात तो यह है कि जिनके पास पैसे अधिक हैं, उनको भी अपने लिये उतना ही खर्च करना चाहिये, जितनेसे शरीरका तथा घरका काम सादगीके साथ अच्छी तरह चलता रहे और शेष पैसा समाजके अभावग्रस्त लोगोंके अभावकी पूर्तिके द्वारा भगवान्‌की सेवामें लगाना चाहिये। तभी धनका सदुपयोग है, तभी धनके द्वारा भगवान्‌की पूजा है और तभी वह अर्थ अनर्थकारी न होकर मुक्तिका—भगवत्प्रीतिका साधन बनता है। हमारे शास्त्र तो कहते हैं कि 'मनुष्यका उतनेपर ही हक है, जितनेसे उसका पेट भरता है, इससे अधिकपर जो अपना हक मानता है, वह चोर है और उसे दण्ड मिलना चाहिये'—

यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति॥

(श्रीमद्भा० ७। १४। ८)

जो अपने लिये ही धनका उपयोग करते हैं, अपनेको धनका स्वामी मानकर अपने ही लिये अनावश्यक वस्तुओंका संग्रह-परिग्रह करते हैं, वे ईश्वरके धनके चोर तो हैं ही, दूसरे लोगोंकी अभावपूर्तिमें बाधक बनकर एक नया पाप और करते हैं। देशमें करोड़ों आदमियोंको अंग ढकनेके लिये भी पर्याप्त कपड़े नहीं हैं और कुछ लोगोंकी पेटियाँ, आलमारियाँ कपड़ोंसे भरी रहती हैं, नये-नये फैशनके कपड़े वे खरीदते ही रहते हैं। सुना है कि कोट-पैंट आदिकी सिलाईमें वे हजारों रुपये व्यय कर देते हैं। उनके घरोंमें इधर-उधर कपड़े बिखरे पड़े रहते हैं, दीमक लग जाती है, ऊनी-रेशमी कपड़ोंको कीड़े काट डालते हैं, पर परिग्रहसे उनका मन नहीं भरता। खानेके लिये मनुष्यको कितना चाहिये, पर हमलोग पचासों प्रकारकी चीजें बनाकर शरीरकी आदतोंको बिगाड़ते, नये-नये रोगोंको बुलाते तथा खाद्य पदार्थोंका विपुल संग्रह रखनेमें अपनी शान समझते हैं। जहाँ करोड़ों भाई एक समय पेटभर पूरा खा नहीं पाते, वहाँ ऐसा व्यवहार क्या पाप नहीं है? करोड़ों मनुष्य टूटी झोपड़ियोंमें रहते हैं, पर एक मनुष्य दर्जनों मकानोंपर अपना नाम रखता है। ऐसा नहीं कि वह दर्जनों मकानोंमें एक साथ सोता-बैठता हो। हाथ कहीं सोये, पैर कहीं सोये, सिर कहीं सोये—ऐसा नहीं होता, उसका अभिमानमात्र बढ़ता है। पर मनुष्यका मोह, उसे ममताके विस्तारमें लगाये रखता है। वह अपने लिये मकान भी बनाता है तो उसमें बीसों कमरे होते हैं, यह सब अनावश्यक वस्तुओंकी आवश्यकता तथा उनके संग्रह-परिग्रहकी प्रवृत्ति मनुष्यको दूसरोंके हितोंकी ओरसे अन्धा बना देती है और प्रकारान्तरसे वह मानव-समाजका अहित करनेमें ही लगा रहता है। यह प्रवृत्ति समाजमें इसी प्रकार बनी रही और बढ़ती रही तो पता नहीं, समाजकी क्या दशा होगी। समाजके हितैषी पुरुषोंको तथा प्रत्येक समझदार पुरुषको इसपर विचार करके ऐसे अमोघ उपाय सोचने तथा करने चाहिये, जिससे मानव-समाज इस पतनोन्मुखी प्रवृत्तिसे बचे तथा सबको इहलौकिक सुख-शान्तिके साथ मानव-जीवनके प्रधान लक्ष्य—विशुद्ध आत्मस्वरूपकी या भगवान्‌की प्राप्ति हो।

उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्

(डॉ० श्रीशिवेन्द्रप्रसादजी गर्ग, 'सुमन')

हितोपदेशकी यह नीति-संगत उक्ति बहुत ही प्रेरणास्पद है कि 'उदार चित्तवालोंके लिये तो सम्पूर्ण पृथ्वी ही कुटुम्बवत् है'—

'उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।'

जो लोग उदार मनवाले हैं, वे मेरे-तेरेमें नहीं पड़ते। उनका दृष्टिकोण स्वसेवाका न होकर परसेवाका होता है। जब वृक्षोंमें फल आते हैं तब वे झुक जाया करते हैं। नदीमें जब जल भरता है तब पानी किनारेकी ओर बढ़ता है। फल एवं नदीका ऐसा आचरण केवल परमार्थके लिये है। उदार व्यक्तिकी सम्पत्ति सबके लिये होती है—वह दूसरेको देकर ही कुछ खाता है। वह अपने लिये संचय नहीं करता। शास्त्रोंके अनुसार जो अकेला खाता है, वह पाप खाता है। शास्त्रोंके अनुसार अपनी आयका पंचमांश अथवा दशमांश दानमें दिया जाना चाहिये।

उदार व्यक्तिका अस्तित्व ही दूसरोंके कल्याणके लिये होता है। साधु, महामानव एवं सज्जनवृन्द छायादार वृक्षकी तरह हैं, जो दूसरोंको शीतल आरामदायक छाया प्रदान करते हैं। उनके सम्पर्कमें आनेपर जीवको केवल लाभ-ही-लाभ मिलता है। ऐसे सज्जन व्यक्तिसे किसीको भी किसी भी प्रकारकी हानिकी सम्भावना नहीं रहती। कारनेलके अनुसार—'उदारता उच्च वंशसे आती है, दया-कृतज्ञता उसके सहायक हैं।' एक चीनी कहावतके अनुसार—'उदार मनवाले भिन्न-भिन्न धर्मोंमें साम्य देखते हैं, संकीर्ण मनवाले उनमें अन्तर खोजते हैं।' उदार व्यक्तिको दूसरेके द्वारा उसके प्रति किया गया पहाड़-जैसा अपकर्म भी राईके बराबर एवं राई-सा सत्कार्य भी पर्वतवत् लगता है। दूसरेके प्रति उसका राईके समान अपकर्म उसे पहाड़-सा एवं पहाड़-सा सत्कार्य राईके समान लगता है। उदार व्यक्ति अपनी हानि सहकर भी दूसरेको लाभ पहुँचाता है। इस सम्बन्धमें उन महात्माजीका दृष्टान्त स्मरणीय है, जो जलमें बह रहे बिच्छूको बचानेके लिये हाथमें लेते जाते
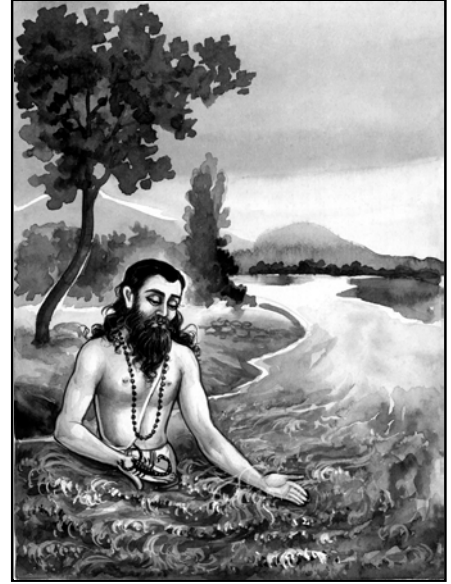
थे, पर बिच्छू डंक मारे ही जा रहा था। किसीके रोके जानेपर उन्होंने कहा—'जब यह छोटा-सा जीव अपना स्वभाव नहीं छोड़ता तो मैं अपना स्वभाव (पररक्षाका भाव) कैसे छोड़ सकता हूँ?'

एक अन्य दृष्टान्त है, किसी सँकरे पुलपर आमने-सामनेसे दो राजाओंके रथ आ रहे थे। दोनों राजाओंके सारथी अड़ गये कि जो राजा छोटा हो, उसीका सारथी रथको बाजू करे (एक तरफ हटाये) एवं दूसरे राजाके रथको रास्ता दे। दोनों राजाओंके सारथियोंने अपने-अपने राजाकी महिमाका बखान किया। दोनों ही राजा धन, राज्य एवं अन्य सभी बातोंमें बराबर निकले। अन्तमें एक सारथीने कहा—'हमारा राजा उदारको उदारतासे, सज्जनको सज्जनतासे, लोभीको लोभसे एवं दुष्टको दुष्टतासे जीतता है।' इसके उत्तरमें दूसरे सारथीने अपने राजाका गुण बताया—'हमारा राजा दुष्टको भी सज्जनतासे जीतता है, लोभीको उदारतासे वशमें लाता है।' सारथी अपनी बात पूरी कर ही रहा था कि दूसरे रथवाले राजा रथसे उतरकर पहलेवाले राजाके पाँवोंमें गिर पड़े।

उदारताका यही वास्तविक आधार है। जब आपके साथ दूसरा अच्छा व्यवहार करता है तब आप उसके साथ अच्छा व्यवहार करते हैं तो यह कोई बड़ी बात नहीं है। बात बड़ी तो तब हो, जब हम अपने अपकारीके प्रति भी सद्व्यवहार करें, उसके प्रति द्रोहका भाव न रखें। एक विद्वान्‌ने कहा है—'यदि किसीने तुझे बुरा कहा और तुझे बुरा लगा तो फिर दोनोंमें अन्तर ही क्या रहा? हम तो फलदाता पेड़की तरह बनें, जो पत्थरकी मार सहकर भी दूसरेको फल देता है। वैर-से-वैर कभी शान्त नहीं होता। हिंसाका उत्तर हिंसा नहीं। किसीको क्षमा कर देना ही सबसे बड़ा दण्ड है। किसी व्यक्तिको क्षमा न करके वैरको बनाये रखना सर्वथा अनुचित है। किसीको क्षमा करके ही उसे आप अपना बना सकते हैं। क्षमाका अर्थ कायरता नहीं, वरन् उदारता एवं सहिष्णुता ही है।'

यक्ष-प्रश्नके सन्दर्भमें जब बगुलेके रूपमें साक्षात् धर्मराजसे युधिष्ठिरने अपने किसी भी भाईको जीवित करवानेके वरदानमें नकुल एवं सहदेवका प्रस्ताव किया तो चकित-से यक्षने कहा—'अर्जुन-जैसे बली एवं भीम-जैसे योद्धा अपने भाइयोंकी तुलनामें तुम नकुल-सहदेवको क्यों जिलाना चाहते हो?' इसपर युधिष्ठिरने कहा—'जैसे मैं अपनी माता कुन्तीका एक पुत्र जीवित हूँ, उसी प्रकार मैं अपनी विमाताको भी पुत्रवती रखना चाहता हूँ।' कहना न होगा कि उनका यह उत्तर ही उनके पाँचों भाइयोंको जिला सका; क्योंकि युधिष्ठिर अपनी उदारताकी परीक्षामें सफल हो गये।

उदार व्यक्ति अपनी उदारताके कारण ही दूसरेको क्षमा कर देता है। दुष्ट नीचता नहीं छोड़ता, पर अमृतकी विशेषता यह है कि वह किसीके लिये विष नहीं बन सकता। अमृतका गुण तो अमरत्व प्रदान करना ही है—

भलो भलाइहि पै लहइ लहइ निचाइहि नीचु।
सुधा सराहिअ अमरताँ गरल सराहिअ मीचु॥

संसार यों तो गुण-दोषमय है ही, पर जो अच्छा है, वह अच्छा ही रहेगा। सन्तरूपी हंस जल-रूप विकारको छोड़कर दुग्ध-रूप गुण ग्रहण कर लेते हैं।

जड़ चेतन गुन दोषमय बिस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार॥

महाभारतके अनुसार जो मनुष्य क्रोध करनेवालेपर क्रोध नहीं करता, वह अपनेको और दूसरे क्रोध करनेवालेको भी महान् भयसे बचा लेता है। ऐसा (सहनशील) व्यक्ति दोनोंका चिकित्सक है—

आत्मानं च परांश्चैव त्रायते महतो भयात्।
क्रुध्यन्तमप्रतिक्रुध्यन् द्वयोरेष चिकित्सकः॥

उदार मनुष्यके लिये धन, वीर पुरुषके लिये मरण, विरक्तके लिये स्त्री और निःस्पृहके लिये संसार तृणके समान है अर्थात् तुच्छ है—

उदारस्य तृणं वित्तं शूरस्य मरणं तृणम्।
विरक्तस्य तृणं भार्या निःस्पृहस्य तृणं जगत्॥

विल्हण कहते हैं—'शंकरने कालकूट विषको पीकर उसे फेंका नहीं, बल्कि अपने कण्ठमें स्थान दे रखा है; कूर्म भी अपनी पीठपर पृथ्वीको रखे हुए ही हैं, समुद्र भी दुस्सह बड़वानलको पूर्ववत् धारण किये है। उदार पुरुष जिसे एक बार अपना लेते हैं, उसका सर्वदा

परिपालन ही करते हैं।'—

अद्यापि नोज्झति हरः किल कालकूटं
कूर्मो बिभर्ति धरणीं खलु पृष्ठभागे।
अम्भोनिधिर्वहति दुःसहवाडवाग्नि-
मङ्गीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति॥

(चौरपञ्चाशिका)

उदार व्यक्ति परायी निन्दा करनेमें मूक, परदोष देखनेमें अन्धे एवं चुगली सुननेमें बधिर बन जाते हैं। चन्दनके वृक्षको चाहे काटा भी जाय, किंतु फिर भी वह कुल्हाड़ीके मुखको सुवासित ही करता है। उदार व्यक्तियोंका जीवन ही दूसरोंके लिये होता है।

चन्दनको बार-बार चाहे जितना ही घिसा जाय, वह उतना ही अधिक सुगन्ध देता जाता है—**'चन्दनं चारु-गन्धम्।'** गन्नेको बार-बार काटने-चूसनेपर भी वह मीठा ही बना रहता है—**'निष्पीडितोऽपि मधु ह्युद्रमतीक्षुदण्डः'** स्वर्णको बार-बार तपानेपर भी वह चमकता ही है—**'काञ्चनं कान्तवर्णम्।'** उत्तम पुरुषोंका चाहे प्राणान्त ही क्यों न हो जाय, उनकी प्रकृतिमें कोई अन्तर नहीं आता। मार्कण्डेयपुराणमें आता है कि श्रेष्ठ पुरुषोंका यही लक्षण है कि उनके चित्तमें अहित करनेवालोंके प्रति भी दयाभाव बना रहता है। कर्णने अपना कवच-कुण्डल, शिबिने अपना मांस, जीमूतवाहनने अपने प्राण और दधीचिने अपनी अस्थियाँ भी दान कर दीं—महात्माओंके लिये कोई वस्तु अदेय नहीं है। कहा भी गया है—

यस्य जीवन्ति धर्मेण पुत्रा मित्राणि बान्धवाः।
सफलं जीवितं तस्य नात्मार्थे को हि जीवति॥

एक गूढ़ोक्ति है—**'परमार्थी महास्वार्थी।'** इसी प्रकार दान देनेवाला भी परमलोभी है; क्योंकि लोभी तो अपना धन पृथ्वीपर ही छोड़ जाता है, जबकि दाता उसे अपने साथ ले जाता है, अर्थात् मृत्युके बाद भी उसे पुनः प्राप्त कर लेता है। जब एक दाता (रहीम)-को आँखें झुकाये हुए दान करते देखा गया तो उससे इसका कारण पूछा गया। दाताने उत्तर दिया—

देनदार कोइ और है, भेजत है दिन रैन।
लोग भरम मुझपर करत, ताते नीचे नैन॥

उदारता एवं दया ये वे गुण हैं, जो दाता एवं प्राप्तकर्ता दोनोंके लिये उत्तम परिणाम देते हैं। इसीलिये उदारमना व्यक्ति अपना सर्वस्व लुटाकर भी प्रसन्न रहते हैं। जो सुख लुटानेमें है, समर्पण करनेमें है, बाँटनेमें है, वह लूटनेमें नहीं, संचय करनेमें नहीं। अनुदारताका एक ही उत्तर है—उदारता, थप्पड़का एक ही प्रतीकार है—उसके आगे दूसरा गाल कर देना; यही बड़ा बड़प्पन है; अन्यथा हिंसा, प्रतिहिंसाका एक दूषित क्रम चालू हो जाता है। किसीको कुछ देकर, कहीं कुछ खोकर आप जो कुछ प्राप्त करते हैं, निश्चय ही वह बहुत ही अमूल्य निधि है। अपने दुश्मनको कोई महामना ही क्षमा कर पाता है। काश! ऐसी सदाशयता एवं उदारता हम सबमें होती!

सचमुच तेरा-मेरा करना ओछापन है—क्षुद्रता है। उदार चरितवालोंके लिये तो समूची पृथ्वी ही परिवारकी तरह है—**'उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।'** ऐसे ही सात व्यक्तियोंने इस संसारको धारण किया है, जिनमें अलोभी और दानशील अन्तिम हैं—

'अलुब्धैर्दानशीलैश्च सप्तभिर्धार्यते मही।'

(शिवपुराण)

दूसरोंकी निन्दा किसी हालतमें न करो

शेख सादी लड़कपनमें अपने पिताके साथ मक्का जा रहे थे। वे जिस दलके साथ जा रहे थे, उसकी प्रथा थी—आधी रातको उठकर प्रार्थना करना। एक दिन आधी रातके समय सादी और उनके पिता उठे। प्रार्थना की, दूसरे लोगोंको सोते देख सादीने पितासे कहा—'देखिये, ये लोग कितने आलसी हैं, न उठते हैं, न प्रार्थना करते हैं।'

पिताने कड़े शब्दोंमें कहा—'अरे सादी बेटा! तू भी न उठता तो अच्छा होता, जल्दी उठकर दूसरोंकी निन्दा करनेसे तो न उठना ही ठीक था।'

साधकोंके प्रति—

[बिन्दुमें सिन्धु]

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

जो चीज जितनी श्रेष्ठ और आवश्यक होती है, उतनी ही वह सस्ती मिलती है। हीरा-पन्ना हमें उम्रभर देखनेको न मिलें तो भी हम जी सकते हैं, इसलिये वे बहुत महँगे मिलते हैं। अन्न उससे भी सस्ता मिलता है; क्योंकि अन्नके बिना हम जी नहीं सकते। अन्नसे भी जल ज्यादा आवश्यक है, इसलिये वह अन्नसे भी सस्ता मिलता है। जलके बिना तो हम कुछ रह सकते हैं, पर हवाके बिना तो रह ही नहीं सकते, इसलिये हवा मुफ्तमें मिलती है तथा सब जगह मिलती है। परन्तु परमात्मा उससे भी सस्ते हैं! हवा कहीं कम मिलती है, कहीं ज्यादा; कभी तेज चलती है, कभी मन्द; परन्तु परमात्मा सब जगह तथा सब समय समान रीतिसे ज्यों-के-त्यों परिपूर्ण हैं, और वे सबके अपने हैं। उनके बिना कोई भी चीज नहीं है। पृथ्वी, जल, हवा, अग्नि और आकाश तो सदा नहीं रहेंगे, पर परमात्मा सदा ज्यों-के-त्यों रहेंगे। अतः परमात्मा सबसे आवश्यक हैं और सबसे सस्ते हैं। आपने सांसारिक चीजोंको ज्यादा महत्त्व दे रखा है, इसलिये परमात्मा दीखते नहीं। इनको इतना महत्त्व मत दो, परमात्मा दीख जायँगे, उनकी प्राप्ति हो जायगी। केवल उनको याद रखो कि हमारे प्रभु सबमें हैं। उनको याद करनेमें कोई खर्चा नहीं, कोई परिश्रम नहीं, और निहाल हो जाओगे! जिसने परमात्माको हर समय याद रखा, वह सन्त-महात्मा हो गया!

आप लोगोंके पास धन-सम्पत्ति, घर-परिवार आदि है, फिर भी चिन्ता रहती है। परन्तु विरक्त सन्तोंके पास कुछ भी नहीं होता, जंगलमें रहते हैं, फिर भी वे मस्तीमें रहते हैं। इससे सिद्ध होता है कि उनको आपलोगोंसे भी कोई बढ़िया चीज मिली है। वह चीज केवल सन्तोंके लिये ही हो, ऐसी बात नहीं है। वह चीज सब भाई-बहनोंके लिये है। वह मिल जाय तो फिर मौज-ही-मौज है, आनन्द-ही-आनन्द है!!

× × ×

श्रोता—जब भगवान् अपने हैं तो फिर हम उनसे बिछुड़ कैसे गये? चौरासी लाख योनियोंके चक्करमें कैसे पड़ गये? यह आप बतानेकी कृपा करें।

स्वामीजी—बता तो मैं दूँगा, पर इसमें आपको फायदा नहीं है, नुकसान है। मैल कैसे लगा, कब लगा, इससे क्या फायदा? उसको साफ कर दो, इतनी बात है। बीती हुई बातकी चिन्ता करना बुद्धिमानी नहीं है। एक कहावत है कि ***'गयी तिथि ब्राह्मण भी बाँचता नहीं।'***

आज आपको रुपये और भोग अच्छे लगते हैं, बस, यही बन्धनका कारण है। जबतक ये अच्छे लगते रहेंगे, तबतक छूटोगे नहीं। जब ये अच्छे लगने बन्द हो जायँगे, पट प्राप्ति हो जायगी! हम इसलिये फँसे हैं कि हम रुपये और भोग चाहते हैं, मान-बड़ाई चाहते हैं, सत्कार चाहते हैं। यह चाहना छोड़ दें तो सब ठीक हो जायगा।

× × ×

लोग निन्दा करें तो करने दो। सब लोगोंको अपनी तरफसे छुट्टी दे दो, वे चाहे निन्दा करें, चाहे प्रशंसा करें, जिसमें वे राजी हों, करें। आप सबको छुट्टी दे दो तो आपको छुट्टी (मुक्ति) मिल जायगी! प्रशंसामें तो मनुष्य फँस सकता है, पर निन्दामें पाप नष्ट होते हैं। कोई झूठी निन्दा करे तो चुप रहो, सफाई मत दो। सत्यकी सफाई देना सत्यका निरादर है। भरतजी कहते हैं—

जानहुँ रामु कुटिल करि मोही। लोग कहउ गुर साहिब द्रोही॥
सीता राम चरन रति मोरें। अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरें॥

(रा०च०मा० २। २०५। १-२)

दूसरा आदमी हमें खराब समझे तो इसका कोई मूल्य नहीं है। भगवान् दूसरेकी गवाही नहीं लेते। दूसरा आदमी अच्छा कहे तो आप अच्छे हो जाओगे, ऐसा कभी होगा नहीं। अगर आप बुरे हो तो बुरे ही रहोगे। अगर आप अच्छे हो तो अच्छे ही रहोगे, भले ही पूरी

दुनिया बुरा कहे। लोग निन्दा करें तो मनमें आनन्द आना चाहिये। एक सन्तने कहा है—

मन्निन्दया यदि जनः परितोषमेति
नन्वप्रयत्नसुलभोऽयमनुग्रहो मे।
श्रेयोऽर्थिनो हि पुरुषाः परतुष्टिहेतो-
र्दुःखार्जितान्यपि धनानि परित्यजन्ति॥

(जीवन्मुक्तिविवेक २)

'मेरी निन्दासे यदि किसीको सन्तोष होता है, तो बिना प्रयत्नके ही मेरी उनपर कृपा हो गयी; क्योंकि कल्याण चाहनेवाले पुरुष तो दूसरोंके सन्तोषके लिये अपने कष्टपूर्वक कमाये हुए धनका भी परित्याग कर देते हैं (मुझे तो कुछ करना ही नहीं पड़ा)!'

किसी आदमीके पास दस हजार रुपये हैं और वह टिकट लेकर गाड़ीपर चढ़ा है, पर दूसरे कहते हैं कि इसके पास एक कौड़ी भी नहीं है, टिकट भी नहीं लिया होगा, तो क्या उस आदमीको दुःख होगा? वह तो सोचेगा कि अच्छी बात है, मेरी रक्षा हो गयी, कोई जेबकतरा नजदीक नहीं आयेगा!

श्रोता—आपने कहा कि सफाई देना सत्यका निरादर है, यह ठीक समझमें नहीं आया।

स्वामीजी—कोई पूछे तो सत्य बात कह दे। बिना पूछे लोगोंमें कहनेकी जरूरत नहीं। बिना पूछे सफाई देना सत्यका निरादर है। हम पाप नहीं करते, किसीको दुःख नहीं देते, फिर भी हमारी निन्दा होती है तो उसमें दुःख नहीं होना चाहिये, प्रत्युत प्रसन्नता होनी चाहिये। भगवान्‌की तरफसे जो होता है, सब मंगलमय ही होता है। इसलिये मनके विरुद्ध बात हो जाय तो उसमें आनन्द मनाना चाहिये।

× × ×

श्रोता—रामायणमें आया है—***'संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि'*** (रा०च०मा० ७।४५) तो क्या शंकरके भजनके बिना हम भगवान्‌की भक्ति नहीं पा सकते?

स्वामीजी—इसमें एक मार्मिक बात है कि आपसमें खटपट, मतभेद नहीं होना चाहिये। पहले शैवों और वैष्णवोंमें आपसमें बड़ी खटपट थी। उसको गोस्वामीजी महाराजने दूर किया। उन्होंने शंकर और विष्णुको एक बताया और दोनोंको एक-दूसरेका उपासक बताया। शंकरजीके लिये कहा—***'सेवक स्वामि सखा सिय पी के'*** (रा०च०मा० १।१५।४) अर्थात् शंकरजी रामजीके सेवक भी हैं, स्वामी भी हैं और मित्र भी हैं। जैसे, शंकरजीने हनुमान्‌जीका रूप धारण करके रामजीकी सेवा की। लंकापर चढ़ाई करनेसे पहले रामजीने शंकरजीका पूजन किया। तात्पर्य है कि शैवों और वैष्णवोंके बीच मतभेदको लेकर आपसमें खटपट बिलकुल नहीं होनी चाहिये।

वैष्णवलोग शिवजीके मन्दिरमें नहीं जाते तो इसमें एक छिपी हुई बात है। वैष्णवलोग मस्तकपर जो तिलक करते हैं, उसमें तीन रेखाएँ होती हैं—दोनों तरफकी रेखाएँ भगवान्‌के चरणोंका चिह्न और दोनोंके बीचकी लाल रेखा लक्ष्मीजीका चिह्न है। इस तिलकको लगाकर शंकरके सामने नहीं जाते; क्योंकि भगवान् शंकर नग्नवेशमें हैं, फिर लक्ष्मीजीका चिह्न लगाकर उनके सामने कैसे जायँ? परन्तु इसका तात्पर्य खटपट नहीं होना चाहिये। किसीसे भी वैर रखना नरकोंमें ले जानेवाला है। गोस्वामीजी महाराज कहते हैं—

संकरप्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ बास॥

(रा०च०मा० ६।२)

वास्तवमें भगवान् विष्णु और शंकर एक हैं। सत्त्वगुणका रंग सफेद, रजोगुणका रंग लाल और तमोगुणका रंग काला है। सृष्टिकर्ता (रजोगुणी) ब्रह्माजीका रंग तो लाल है, पर विष्णुका काला और शंकरका सफेद रंग है, जबकि पालनकर्ता (सत्त्वगुणी) विष्णुका सफेद और संहारकर्ता (तमोगुणी) शंकरका काला रंग होना चाहिये। कारण यह है कि शंकरका ध्यान करनेसे विष्णु काले हो गये और विष्णुका ध्यान करनेसे शंकर सफेद हो गये! विष्णुके भक्त जो तिलक करते हैं, वह शंकरके

त्रिशूलके समान है, और शंकरके भक्त जो तिलक करते हैं, वह विष्णुके धनुषके समान है।

आपके घरोंमें भी आपसमें खटपट नहीं होनी चाहिये। आपसमें प्रेम होना चाहिये। उपासना भले ही अलग-अलग हो, पर आपसमें वैर नहीं होना चाहिये। आपसका वैर विनाश करनेवाला होता है। किसीसे वैर करोगे तो फिर '**वासुदेवः सर्वम्**' (सब संसार भगवत्स्वरूप है)-का अनुभव कैसे करोगे? घरमें साथ-साथ रहो तो प्रेमके लिये और मतभेद होनेपर अलग-अलग हो जाओ तो प्रेमके लिये। आपसका प्रेम परमात्माकी तरफ ले जानेवाला होता है। आपसमें खटपट रखते हो तो आपने सत्संग क्या किया? यह तो कुसंग है। कोई किसी भी इष्टको माने, पर आपसमें प्रेम होना चाहिये। हमारे सत्संगमें सभी सम्प्रदायोंके लोग आते हैं, मुसलमान भी आते हैं। सुजानगढ़में मुसलमान लोग मुझे अपने घर भी ले गये थे। सत्संग करनेसे कई मुसलमानोंने शराब और मांसका सेवन करना छोड़ दिया। इसलिये आप सबके साथ प्रेम रखो, सबका हित चाहो। प्रेम ऐसी चीज है, जो जड़तामें भी चेतनता ले आती है।

× × ×

अगर आप सुगमतासे भगवत्प्राप्ति चाहते हैं तो मेरी प्रार्थना है कि आप 'मैं भगवान्‌का हूँ'—यह मान लें। यह 'चुप साधन' अथवा 'मूक सत्संग' से भी बढ़िया साधन है! जैसे आपके घरकी कन्या विवाह होनेपर 'मैं ससुरालकी हूँ'—यह मान लेती है, ऐसे आप 'मैं भगवान्‌का हूँ'—यह मान लें। यह सबसे सुगम और सबसे बढ़िया साधन है। इसको भगवान्‌ने सबसे अधिक गोपनीय साधन कहा है—'**सर्वगुह्यतमम्**' (गीता १८। ६४)। गीताभरमें यह '**सर्वगुह्यतमम्**' पद एक ही बार आया है। मैं हाथ जोड़कर प्रेमसे कहता हूँ कि मेरी जानकारीमें यह सबसे बढ़िया साधन है।

आप जहाँ हैं, वहाँ ही अपनेको भगवान्‌का मान लो। चिन्ता बिलकुल छोड़ दो। जो हमारा मालिक है, वह चिन्ता करे, मैं चिन्ता क्यों करूँ?

चिन्ता दीनदयाल को, मो मन सदा आनन्द।
जायो सो प्रतिपालसी, रामदास गोबिन्द॥

वास्तवमें आप बिलकुल भगवान्‌के ही हैं, पर आपने मान रखा है कि मैं अमुक देश, गाँव, मोहल्ले, घर आदिका हूँ। यह देश, गाँव, मोहल्ला, घर आपका नहीं है। आप यहाँ आये हो। इसलिये मेरी सम्मति यही है कि आप आजसे ही यह स्वीकार कर लो कि 'मैं भगवान्‌का हूँ'। हर समय भगवान्‌के ही होकर रहो। भजन करो तो भगवान्‌के होकर भजन करो। संसारके होकर भजन करते हो तो वह भजन बढ़िया नहीं होता।

× × ×

श्रोता—अच्छे कर्म करना या संसारको अपना न मानना या भगवान्‌को अपना मानना—तीनों साधनोंमें कौन-सा साधन बढ़िया है, जिससे हमारे राग-द्वेष दूर हो जायँ और हमारा कल्याण हो जाय?

स्वामीजी—भगवान्‌को अपना मानना सबसे श्रेष्ठ साधन है। भगवान्‌को अपना माननेसे भगवत्कृपासे राग-द्वेष भी दूर हो जाते हैं, समता भी आ जाती है, शान्ति भी मिल जाती है, मुक्ति भी हो जाती है। कारण कि मूलमें हम भगवान्‌के अंश हैं—'**ममैवांशो जीवलोके**' (गीता १५। ७)। इस मूलको ठीक करनेसे सब ठीक हो जायगा।

श्रोता—इष्ट तो एक होना चाहिये, पर जब हम '**हरे राम**......' मन्त्रका जप करते हैं तो हमें राम और कृष्ण दोनों याद आते हैं! हम क्या करें?

स्वामीजी—राम और कृष्ण दो नहीं हैं, एक ही हैं—यह विचार कर लो अथवा यह मान लो कि राम ही कृष्ण बने हैं। चाहे दोनोंको एकरूप कर लो, चाहे दोनोंको एकरूप मान लो।

श्रोता—भगवान्‌के आनन्दकी अनुभूति क्यों नहीं होती?

स्वामीजी—संसारके सुखमें आसक्ति होनेके कारण। इसको जबतक नहीं छोड़ोगे, तबतक भगवान्‌के आनन्दका अथवा निजानन्दका अनुभव नहीं होगा।

× × ×

'भावे हि विद्यते देवः'

(दण्डी स्वामी श्रीमहेश्वरानन्दजी सरस्वती)

मूर्तिकार मूर्ति निर्माण करते समय जूते पहने हुए पैरसे दबाकर पत्थरको तराशता है। आकृतिके उभर आनेपर फिर वह उसपर पैर नहीं रखता, जूते भी उतारकर सधे हाथोंसे मूर्तिके सौन्दर्यको निखारता है। उसी मूर्तिके मन्दिरमें प्रतिष्ठित हो जानेपर वही मूर्तिकार मन्दिरके बाहर जूते उतारकर मन्दिरकी प्रथम सीढ़ीको प्रणाम करते हुए आकर मूर्तिको दण्डवत् प्रणामकर प्रार्थना भी करता है; क्योंकि उसकी दृष्टिमें प्राणप्रतिष्ठा हो जानेके कारण वह अब पाषाण-प्रतिमा न होकर भावनाकी प्रगल्भताके कारण साक्षात् भगवान् हैं। लकड़ी, पत्थर, मिट्टी तथा धातु इत्यादिकी मूर्तियोंमें नहीं, साधककी भावनामें ही वह शक्ति है, जिससे मूर्तिसे भगवान् प्रकट हो जाते हैं—

न काष्ठे विद्यते देवो न पाषाणे न मृण्मये।
भावे हि विद्यते देवो तस्मात् भावबलं बलम्॥

भावकी शक्तिसे ही श्रीरामकृष्णपरमहंसजीने भुवनेश्वरके कालीमन्दिरकी मूर्तिसे साक्षात् कालिकाको प्रकट कर लिया था तथा हिरण्यकशिपुके पूछनेपर कि तेरे प्राणहरणार्थ किये हुए सम्पूर्ण प्रयासोंको विफलकर तेरी प्राणरक्षा करनेवाला रक्षक कहाँ है? 'वह सर्वत्र है, जिस खम्भेमें आपने मुझे बाँध रखा है, उसमें भी है', इस बातको सत्य करनेके लिये भगवान् श्रीहरि नृसिंहरूपमें प्रकट हो गये थे।

हमारे लौकिक तथा पारमार्थिक सभी कार्य भावनाओंपर ही अवलम्बित होते हैं। एक स्त्रीमें पिता वात्सल्यभाव रखते हुए सिरपर हाथ रखकर आशीर्वाद देता है, उसका पति उसमें माधुर्यभाव रखता है, पुत्र मातृभावसे सेवा-शुश्रूषा करते हुए चरणोंमें प्रणामकर आशीर्वादकी कामना करता है, भाई बहनका भाव रखकर यथासाध्य हित-सम्पादन करता है, कामी पुरुष नेत्र, दन्त, केश तथा अंगोंकी सुन्दरतापर मुग्ध होकर वासनात्मक भाव रखता है तथा एक साधक उसे हाड़-मांसादि अपवित्र धातुओंसे निर्मित मलमूत्रका थैला समझ विरक्तिभाव लाता है। स्त्रीत्वकी दृष्टिसे समानता होते हुए भी भावोंमें पार्थक्य होनेसे सबकी भावनाएँ अलग-अलग होती हैं। वैसे ही मूर्तिमें जिसकी जैसी भावना होती है, उसके लिये मूर्तिका स्वरूप तथा उपासनाका फल भी वैसा ही होता है। ये सात भावनानुसार ही फल देते हैं—

मन्त्रे तीर्थे द्विजे देवे दैवज्ञे भेषजे गुरौ।
यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी॥

मन्त्र, तीर्थ, ब्राह्मण, देवता, ज्योतिषी, औषधि तथा गुरुके प्रति जिसकी जैसी भावना होती है, उसे वैसा ही फल मिलता है। वासना मनुष्यको हैवान बना देती है, भावना पत्थरको भगवान् बना देती है तथा उपासना मनुष्यको भगवान् बना देती है। भगवान्‌की बनायी चलती-बोलती मूर्तियों (सभी प्राणियों)-में जिसे भगवान्‌का दर्शन नहीं होता, उसे किसी मूर्तिकारकी बनायी मूर्तिमें भगवान् कैसे मिलेंगे? उसे तो केवल परिश्रम और विडम्बना ही हाथ लगेगी। श्रीमद्भागवतमें भगवान् कपिलने माता देवहूतिको उपदेश देते हुए कहा है—माताजी! मैं आत्मारूपसे सदा सभी जीवोंमें स्थित हूँ, इसलिये जो लोग मुझ सर्वभूतस्थित परमात्माका अनादर करके केवल प्रतिमामें ही मेरा पूजन करते हैं, उनकी वह पूजा स्वाँगमात्र है।

अहं सर्वेषु भूतेषु भूतात्मावस्थितः सदा।
तमवज्ञाय मां मर्त्यः कुरुतेऽर्चाविडम्बनम्॥

भगवान् सभीमें अन्तरात्मारूपसे विराजमान हैं। अतः किसीका अपमान-तिरस्कार न करते हुए सर्वहित सम्पादनपूर्वक उपासना ही सच्ची पूजा है। मनुष्यके पास केवल तीन वस्तुएँ होती हैं—तन, मन तथा धन। तन सबमें भगवद्भाव रखकर सेवा करनेसे, मन भगवद्भक्तिसे तथा धन सत्पात्र (अभावयुक्त)-को देनेसे पवित्र होता है। संसारकी सेवामें तन तथा धन मुख्य होता है, मन गौण होता है, परंतु भगवान्‌की सेवामें तन तथा धन गौण है, मन ही मुख्य है। मन मुक्तिरूपी तालेकी चाभीके समान है। संसारमें लगा हुआ मन ही बाँधता है, वही

भगवदुपासनाद्वारा वासनाहीन होकर ईश्वरमें लगनेपर मुक्ति प्रदान करता है।

शरीर तथा धनसे भगवत्सेवा-पूजा करनेपर प्रायः मन भाग जाता है, परंतु मनसे की हुई सेवा-पूजा, तन तथा धनसे परिपुष्ट होकर ध्यानकी प्रगाढ़ताको बढ़ाकर चित्तको भगवन्मय बना देती है, इसी कारण मानसी सेवा-पूजाको मुख्य बताया गया है—

कृष्णसेवा सदा कार्या मानसी सा परा मता।
चेतस्तत्प्रवणं सेवा तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा॥

गीतामें '**मन्मना भव**' कहकर भगवान्‌ने अपनेमें मन लगानेकी प्रेरणा दी है तथा '**मय्यर्पितमनोबुद्धिः**' का फल '**मामेवैष्यत्यसंशयम्**' निःसन्देह भगवत्प्राप्ति बताया है। ***'जैसा करे संग तैसा चढ़े रंग'***, यह कहावत प्रसिद्ध है। भगवान् प्रेम, कृपा, सौहार्द, माधुर्य तथा दयालुता इत्यादि गुणगणोंके भण्डार एवं निर्विकार हैं। अतः शक्तिपुंजसे जुड़कर अन्धकारनाशक विद्युत्-बल्बकी भाँति भगवत्प्रेम-भावभावित भक्त स्वयं दिव्य होकर अपने सान्निध्यमें आनेवालोंमें भी निर्विकारिता लानेमें समर्थ हो जाता है—

हरी प्रेमरस जे पगे, तन-मन की सुधि नाहिं।
'महेश्वरानन्द' तिन संगत, सकल विकार नसाहिं॥

भण्डारेके समय अनुभवमें आया है, 'भोजन कर लो' कहनेपर कम लोग भोजन करते हैं, परंतु 'भगवान्‌का प्रसाद पा लो' कहनेपर भोजन करनेवालोंकी संख्या बढ़ जाती है। जब अन्नसे भगवान्‌का सम्बन्ध जुड़ते ही भावना बढ़ जाती है, जिससे भण्डारेके भोजनका महत्त्व बढ़ जाता है, तब परमेश्वरसे सम्बन्ध जोड़नेवाले मनुष्यकी महत्ता क्यों नहीं बढ़ेगी? श्रीचैतन्यमहाप्रभुजीने सनातनसे कहा है—'**भक्तिबले पार तुमि ब्रह्माण्ड शोधिते।**' भक्तिकी शक्तिद्वारा तो तुम ब्रह्माण्डको भी दिव्य, शुद्ध, विकारहीन बना सकते हो।

यह प्रेमी-भक्तोंके प्रेम-भावकी ही विशेषता है कि शक्ति, ऐश्वर्य, धर्म, यश, ज्ञान, वैराग्य, तप, स्रष्टापन, द्रष्टापन तथा सम्यक् आत्मबोध—इन दस ऐश्वर्योंसे युक्त तथा क्लेश, कर्म-विपाक और आशयशून्य, अजन्मा, निर्विकारी, इच्छारहित, सर्वव्यापी, निराकार, मायारहित कूटस्थ ब्रह्म नित्य शुद्ध-बुद्ध-मुक्त तथा सबका मुक्तिदाता होते हुए भी वह प्रेमास्पद भगवान् प्रेमी-भक्तोंके हाथका खिलौना बन जाता है। मैं उस अति आश्चर्यजनक प्रेम-बन्धनकी वन्दना करता हूँ—

अहो चित्रमहो चित्रं वन्दे तत्प्रेमबन्धनम्।
यद्बद्धं मुक्तिदं मुक्तं ब्रह्मक्रीडामृगीकृतम्॥

प्रेम-भावभावित होनेके कारण ही तो गोपियोंके छाछके लोभमें वे नाचते हैं, भक्तिमती करमाबाईकी खिचड़ी आरोगते हैं, दुर्योधनके मेवे-मिष्टान्नादि छप्पन भोगोंको त्यागकर विदुरानीके छिलकोंको सराहते हुए खाते हैं, शबरीके जूठे बेर तथा सुदामाके सूखे चिउड़ेका भोग लगाते हैं।

प्रेम-भावपूरित हृदयकी प्राप्ति असीम भगवत्कृपासे होती है। भगवत्प्रदत्त प्रेम जब क्षणभंगुर—विनाशशील वस्तु एवं व्यक्तियोंके प्रति होता है तब मोह, दुःख, अशान्तिका जनक होता है और राग कहलाता है, वही प्रेम ईश्वरके प्रति होनेपर अनुराग कहलाता है। राग स्वार्थ, पशुता एवं जड़ताका जनक है, जिससे मनके अधोगामी होनेसे अशान्ति एवं पतनकी सम्भावनाएँ बढ़ती हैं, जबकि अनुराग त्याग एवं परमार्थका जनक है, जिससे मन ऊर्ध्वगामी होता है और मनुष्य शान्ति एवं परमकल्याणकी ओर बढ़ता है। रागसे दुःख-दोषोंकी अभिवृद्धि तथा भगवद्विमुखता बढ़ती है, जबकि अनुरागसे सद्‌गुणोंकी अभिवृद्धि, सुख-शान्तिकी प्राप्ति होती है। राग गहनतम अन्धकार है, जबकि अनुराग दिव्यता-निर्मलतायुक्त सूर्य है। राग विषमिश्रित मधु है तो अनुराग स्वर्गीय अमृत है। सांसारिक सुख-सामग्रियोंकी परिपूर्ण उपलब्धता होनेपर भी भगवान्‌के प्रति प्रेम न होनेसे जीवनमें पूर्णता नहीं आती।

काम बड़ो, धन-धाम बड़ो, जग में यश छायो नाम बड़ो है।
ज्ञान बड़ो, बहु मान बड़ो, वंश कुटुम्ब गुमान बड़ो है॥
गुन-रूप बड़ो, पुरुषार्थ बड़ो, बल-वैभव इन्द्र समान बड़ो है।
महेश्वरानंद हरि भगति बिना, या जीवन में सब घटो ही घटो है॥

याद रखो, जो आपको छोड़ दे या जिसे आपको

छोड़ना पड़े, वह आपका अपना नहीं हो सकता, आपका अपना तो वही है, जो कभी आपको न छोड़े एवं आप जिसे छोड़ना चाहकर भी न छोड़ सको, उसे पहचानकर उसमें ममत्वभाव रखो। ममत्वरूपा भक्ति पाँच प्रकारकी होती है—१. भगवान् हमारी आत्मा अर्थात् परमप्रेमास्पद हैं, २. स्वामी-सेवक-भाव, ३. पिता-पुत्र या माता-पुत्र-भाव, ४. सखा-भाव, ५. माधुर्य-भाव (पत्नी-पति या प्रेमी-प्रेयसीभाव)। कई विद्वानोंने ज्ञानियों-योगियोंके शान्तभावको छठा भाव स्वीकार किया है। इनमेंसे जो रुचे, उसी भावकी दृढ़तासे अवश्य कल्याण होगा।

ममता रखिए राम सों समता सब संसार।
सेवा करिए सर्व की तब होवे उद्धार॥

सन्त-उद्बोधन

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

मेरे निजस्वरूप!

सच्ची असमर्थता जीवनका वरदान है। यह अनन्तका मंगलमय विधान है कि सर्वसमर्थ असमर्थको मिलते हैं, अपना लेते हैं और अपना अमूल्य प्रेम प्रदान करते हैं, पर यह रहस्य उन्हीं साधकोंको स्पष्ट होता है, जिन्होंने अपने द्वारा अपनी असमर्थताका अनुभव किया है।

अब विचार यह करना है कि असमर्थता क्या है? पराश्रय और परिश्रमके आधारपर अपनेको सन्तोष देना बड़ी भारी असमर्थता है।

इसी असमर्थताने जो अपने हैं, अपनेमें हैं, अभी हैं और सर्वसमर्थ हैं, उनमें अविचल आस्था नहीं होने दी।

विचार उसपर किया जा सकता है, जो बुद्धिकी सीमामें हो, सीमित हो, परिवर्तनशील हो और अभावरूप हो। पर जो सदैव है, अनन्त है और असीम है, उसपर विचार नहीं किया जा सकता। वह तो आस्थाका विषय है।

आस्थाका स्वतन्त्र पथ है। उस पथपर वे साधक चल पाते हैं, जो असमर्थतासे पीड़ित हैं। अपनी असमर्थताका अनुभव मानवका सर्वोत्कृष्ट अनुभव है।

मिली हुई सामर्थ्यका सदुपयोग करनेपर आवश्यक सामर्थ्य बिना माँगे ही मिलती रहती है। सामर्थ्यका सदुपयोग ही विश्वशान्तिका मूलमन्त्र है।

सामर्थ्यका सदुपयोग तभी सम्भव है, जब यह मान लिया जाय कि मिला हुआ अपना नहीं है और अपने लिये नहीं है। सामर्थ्य भी सर्वसमर्थकी देन है। अत: उसके सदुपयोगमें अभिमानके लिये कोई स्थान ही नहीं है।

जो सभीके अपने हैं, वे ही सर्वसमर्थ हैं। मिली हुई वस्तु, योग्यता, सामर्थ्य आदिका सदुपयोग उसी सर्वसमर्थके नाते उसकी विश्ववाटिकाकी सेवामें करना है। ऐसी सेवा वही कर सकता है, जो वाटिकाके फलोंकी आशा ही नहीं करता।

मानव-जीवनमें जो करनेकी बात है, वह ज्ञानके अनुरूप ही होनी चाहिये। ज्ञान-विरोधी कार्य तो अकर्तव्य ही है, जिसका मानव-जीवनमें कोई स्थान ही नहीं है।

कर्तव्यका ज्ञान और उसके पालनकी सामर्थ्य मानवको जन्मजात प्राप्त है, पर मानव अपनी भूलसे कर्तव्यसे विमुख होकर अकर्तव्यमें प्रवृत्त हो जाता है।

मानवने मिली हुई स्वाधीनताका दुरुपयोगकर अपनेको अनुपयोगी बना लिया है। साथ ही वह स्वयं पराधीन होकर अनेक प्रकारकी बेबसी अनुभव करता है। यद्यपि स्वभावसे ही उसे स्वाधीनता प्रिय है।

मानव जगत्के प्रति उदार, अपने लिये स्वाधीन तथा प्रभुके लिये प्रेमी होनेकी आवश्यकता अनुभव करता है, पर भूलसे आसक्तिमें आबद्ध होकर वह उदारता, स्वाधीनता और प्रेमसे वंचित हो गया।

जिन्होंने मानवका निर्माण किया है, वे अपने दुलारे मानवको निरन्तर देखते रहते हैं और प्रतीक्षा करते रहते हैं कि मेरा दुलारा असमर्थता अनुभव करे और मैं उसे अपना लूँ। असमर्थताका अनुभव होनेपर साधकको जो वेदना होती है, वह करुणामयसे सही नहीं जाती है।

साधन-सूत्र

[कुसंगसे व्यक्तिका नाश होता है]

(आचार्य श्रीगोविन्दरामजी शर्मा)

भगवान् श्रीरामके राज्याभिषेककी तैयारियाँ हो रही हैं। सभी अयोध्यावासी बड़े ही आनन्दित हैं, शुभ मंगलाचारके साज सज रहे हैं। राजद्वारमें बड़ी भीड़ हो रही है। श्रीरामके बाल-सखा राजतिलकका समाचार सुनकर हृदयमें हर्षित होते हैं तथा दस-पाँच मिलकर श्रीरामके पास जाते हैं। प्रभु श्रीराम उनकी कुशल-क्षेम पूछते हैं। नगरमें सभीकी अभिलाषा है कि हम अपने कर्मवश भ्रमते हुए जिस-जिस योनिमें जनमें, वहाँ-वहाँ हम सेवक हों और सीतापति श्रीराम हमारे स्वामी हों तथा यह नाता अन्ततक निभ जाय।

परंतु रानी कैकेयीके हृदयमें बड़ी जलन हो रही है। मन्थराके फैलाये जालमें फँसकर वह कहती है—'हे

सखी! संसारमें मेरा तेरे समान हितकारी और कोई नहीं है। तू मुझ बही जाती हुईके लिये सहारा हुई है।' कैकेयी कोपका सब साज सजकर कोपभवनमें सो जाती है और राज्य करती हुई भी वह अपनी दुष्ट बुद्धिसे नष्ट हो जाती है।

यहाँ गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज बड़ी ही सुन्दर पंक्ति कहते हैं—

को न कुसंगति पाइ नसाई। रहइ न नीच मतें चतुराई॥

(रा०च०मा० २।२४।८)

अर्थात् कुसंगति पाकर कौन नष्ट नहीं होता। नीचके मतके अनुसार चलनेसे चतुराई नहीं रह जाती।

कैकेयी राजा दशरथकी प्रिय रानी थी और रामको अपने पुत्र भरतसे भी अधिक प्रेम करती थी, किंतु मन्थराकी कुसंगतिमें आकर उसने अयोध्याका सुख छीन लिया। राजा दशरथका मरण हुआ। राम, लक्ष्मण, सीता चौदह वर्षके लिये वनवासको गये, भरतका कैकेयीसे विछोह हुआ, स्वयं कैकेयीके दुर्दिन आरम्भ हो गये। यह सब कैकेयीकी दुर्बुद्धिके कारण हुआ।

श्रीरामचरितमानसका ही एक अन्य प्रसंग है, रावणका सदाचारी भाई विभीषण रावणको समझाता है—'हे नाथ! पुराण और वेद ऐसा कहते हैं कि सुबुद्धि (अच्छी बुद्धि) और कुबुद्धि (खोटी बुद्धि) सबके हृदयमें रहती हैं, जहाँ सुबुद्धि है, वहाँ नाना प्रकारकी सम्पदाएँ (सुखकी स्थिति) रहती हैं और जहाँ कुबुद्धि है, वहाँ परिणाममें अनेक प्रकारकी विपत्तियाँ (दुःखकी स्थिति) रहती हैं। आपके हृदयमें उलटी बुद्धि आ बसी है। इसीसे आप हितको अहित और शत्रुको मित्र मान रहे हैं।' (रा०च०मा० ५।४०।५—७) रावण विभीषणको लात मारता है। विभीषण रावणका त्याग कर देते हैं तथा प्रभु श्रीरामकी शरणागतिमें चले जाते हैं। रावणने जिस क्षण विभीषणको त्यागा, उसी क्षण वह अभागा ऐश्वर्यसे हीन हो गया तथा सभी राक्षसोंकी मृत्यु निश्चित हो गयी।

विभीषण जब भगवान् श्रीरामकी शरणमें जाते हैं तो वे विभीषणकी कुशल-क्षेम पूछते हुए कहते हैं—'हे तात! नरकमें रहना अच्छा है, परंतु विधाता दुष्टका संग कभी न दे।'

जो व्यक्ति उचित सलाह नहीं मानता है तथा कुसंगमें रहता है, उसका नाश अवश्यम्भावी है। रावणका पूरे कुलके साथ नाश हो गया।

श्रीमद्भागवतमें कान्यकुब्ज नगरके एक शास्त्रज्ञ ब्राह्मण अजामिलका चरित्र वर्णन हुआ है, जो शील, सदाचार और सद्‌गुणोंका खजाना था। वह ब्रह्मचारी, विनयी, जितेन्द्रिय, सत्यनिष्ठ, मन्त्रवेत्ता और पवित्र था। उसने गुरु, अग्नि, अतिथि और वृद्ध पुरुषोंकी सेवा की थी। वह समस्त प्राणियोंका हित चाहता, उपकार करता, आवश्यकताके अनुसार ही बोलता और किसीके गुणोंमें दोष नहीं ढूँढ़ता था। एक दिन वह अपने पिताके आदेशानुसार वनमें गया और वहाँसे फल-फूल, समिधा और कुश लेकर घर लौटा। लौटते समय उसने एक भ्रष्ट, कामी, निर्लज्ज शराबी शूद्रको किसी वेश्याके साथ दुराचरण करते देखा। अजामिल कामसे मोहित हो गया और उसकी सदाचार और शास्त्र-सम्बन्धी सभी चेष्टाएँ नष्ट हो गयीं। वह वेश्याका गुलाम हो गया और उसने अपनी कुलीन नवयुवती और विवाहिता पत्नीतकका परित्याग कर दिया। दासीके संसर्गसे दूषित होनेके कारण उसका सदाचार नष्ट हो चुका था। वह पतित कभी बटोहियोंको बाँधकर उन्हें लूट लेता, कभी लोगोंको जूएके छलसे हरा देता, किसीका धन धोखा-धड़ीसे ले लेता तो किसीका चुरा लेता। इस प्रकार अत्यन्त निन्दनीय वृत्तिका आश्रय लेकर वह अपने कुटुम्बका पेट भरता था और दूसरे प्राणियोंको बहुत ही सताता था।

भागवतके इस दृष्टान्तसे यह शिक्षा मिलती है कि श्रेष्ठ व्यक्ति भी कुसंग पाकर नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है।

गीतामें भगवान् कहते हैं—

'अपने द्वारा अपना संसार-समुद्रसे उद्धार करे और अपनेको अधोगतिमें न डाले; क्योंकि यह मनुष्य आप ही तो अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है।'

भगवान्‌ने हमें विवेक दिया है। उसके प्रकाशमें देखना चाहिये कि हमारे लिये क्या उचित है तथा क्या अनुचित है? हमें सदैव श्रेष्ठ व्यक्तियों-सा आचरण करना चाहिये तथा कभी कुसंगमें नहीं पड़ना चाहिये। गलत आचरण होनेमें प्रधान कारण विषयोंकी आसक्ति ही है; आसक्तिसे कामना उत्पन्न होती है, कामनाकी पूर्तिसे लोभ और कामनामें विघ्न पड़नेसे क्रोध उत्पन्न होता है। सारे दुराचरणकी जड़ काम, क्रोध और लोभ ही हैं। इसीलिये भगवान्‌ने कहा है—'काम, क्रोध और लोभ—ये तीन नरकके द्वार हैं; ये आत्माका नाश करनेवाले हैं, अतएव इन तीनोंको त्याग देना चाहिये।'

सांसारिक भोगोंकी आसक्ति एवं सांसारिक वस्तुओंके संग्रहकी रुचि महान् अनर्थकारी है। भोगोंकी आसक्ति एवं संग्रहकी रुचि कभी मिट नहीं सकती। ज्यों-ज्यों भोग भोगते जाते हैं, रुपयोंका संग्रह करते जाते हैं, त्यों-त्यों उनकी रुचि बढ़ती जाती है—

'जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई।'

श्रीमद्भावगतमें वर्णन आता है कि राजा ययाति स्त्रीके वशमें होकर एक हजार वर्षतक विषयोंका भोग करते रहे, अपने पुत्रकी युवावस्थातक ले ली, तब भी उनकी विषय-भोगोंको भोगनेकी इच्छाका शमन नहीं हुआ। अन्ततः उनको भोगोंसे विरक्ति नहीं हुई। तब वे पश्चात्ताप करते हुए कहते हैं—'पृथ्वीमें जितने भी धान्य (चावल, जौ आदि) सुवर्ण, पशु और स्त्रियाँ हैं—वे सब-के-सब मिलकर भी उस पुरुषके मनको सन्तुष्ट नहीं कर सकते, जो कामनाओंके प्रहारसे जर्जर हो रहा है। विषयोंके भोगनेसे भोगवासना कभी शान्त नहीं हो सकती, बल्कि जैसे घीकी आहुति डालनेपर आग और भड़क उठती है, वैसे ही भोगवासनाएँ भी भोगोंसे प्रबल हो जाती हैं।'

हमें यह भी नहीं मानना चाहिये कि भोग और संग्रहकी रुचि नष्ट नहीं होती है। इतिहासमें सैकड़ों-हजारों ऐसे दृष्टान्त हैं, जिन्होंने भोगोंकी रुचिका नाश करनेके सम्बन्धमें आदर्श स्थापित किये हैं। स्वयं

भगवान्‌ने गीतामें कहा है—'पहले भी जिनके राग, भय और क्रोध सर्वथा नष्ट हो गये और जो मुझमें अनन्य प्रेमपूर्वक स्थित रहते थे, ऐसे मेरे आश्रित रहनेवाले बहुत-से भक्त ज्ञानरूप तपसे पवित्र होकर मेरे स्वरूपको प्राप्त हो चुके हैं।'

काम-क्रोधादि अन्तःकरणके धर्म नहीं हैं, विकार हैं। इसीलिये सत्संग, कुसंग पाकर ये घटते-बढ़ते रहते हैं। घटने-बढ़नेवाली चीज नाशको प्राप्त हो सकती है। काम-क्रोधके वशमें रहनेवाले व्यक्ति ज्ञानी नहीं कहे जा सकते। जबतक हममें ये दोष हैं, तबतक हमें इन दोषोंके नाशका प्रयत्न करते रहना चाहिये। अपने जीवनको हमें सदाचारी बनाना चाहिये तथा दुराचारी व्यक्तियोंका संग कभी नहीं करना चाहिये। जैसे अन्धेके पीछे चलनेवाला अन्धा गड्ढेमें गिरता है, वैसे ही दुष्ट व्यक्तियोंका अनुसरण करनेवाला पतित होता है। हमें सदैव सत्पुरुषोंका संग करना चाहिये; क्योंकि सत्पुरुषोंके सदुपदेश ही हमारे मनकी आसक्तिको मिटाते हैं। हम यह दृढ़ निश्चय कर लें कि कुसंग हमारा अधःपतन करनेवाला है।

वृद्धजनोंके प्रति युवाओंका कर्तव्य

(श्रीइन्द्रमलजी राठी)

वृद्धावस्थामें मानव-जीवनको अभिशाप न बनने देने एवं पारिवारिक सामंजस्य बनाये रखनेहेतु कतिपय मननीय एवं करणीय बिन्दु—

१. परिवारके सभी सदस्य प्रतिदिन प्रातःकाल उठनेके साथ ही अथवा स्नानोपरान्त वृद्ध माता-पिता, दादा-दादी तथा अपनेसे बड़ोंके चरण-स्पर्श करते हुए उन्हें नमन करें, प्रणाम करें। हमारी भारतीय संस्कृतिके अनुसार दाहिने हाथसे दाहिने पैरका एवं बाँयें हाथसे बाँयें पैरका अँगूठा स्पर्श करते हुए उनसे आशीर्वाद प्राप्त करनेके साथ ऊर्जा भी प्राप्त करना न भूलें। ये पारम्परिक संस्कृति ही पारस्परिक प्रेम एवं अटूट बन्धनका प्रथम सोपान है।

२. प्रतिदिन वृद्ध पुरुषोंके साथ कुछ समय अवश्य व्यतीत करें, जिससे वे अपने-आपको उपेक्षित न समझें। वार्तालाप करें, खेलें, उनका समाचार जानें, हँसी-विनोदकी बातें करें। हँसना स्वास्थ्यके लिये अत्यन्त उपयोगी है। इससे समरसताके साथ-साथ सभी लाभान्वित होंगे।

३. यथासम्भव इनके साथ प्रतिदिन प्रातःकाल एवं सायंकाल सन्ध्याके समय आरती, भजन, संकीर्तन अवश्य करें।

४. प्रतिदिन उनके सामर्थ्य एवं ऋतुके अनुसार उपयुक्त समयपर उन्हें भ्रमणके लिये अवश्य ले जायँ। मन्दिर जानेमें ये काम दोहरा लाभ देगा। दर्शनलाभके साथ-साथ शरीरकी हलचलके कारण साधारण व्यायाम भी हो जायगा।

५. वृद्ध लोगोंके सामर्थ्यानुसार उन्हें धार्मिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक कार्योंमें प्रतिभागी बनाते रहें, जिससे वे अपने-आपको संसारसे विलग न समझें और न अनुपयोगी ही। कभी-कभी धार्मिक आख्यान, कथा, कहानी सुनानेहेतु उन्हें अभिप्रेरित करें।

६. सत्संगका अवसर मिलनेपर परिवारके सदस्योंको इस प्रकार तालमेल बैठाना चाहिये, जिससे उनकी इच्छा एवं सामर्थ्यके अनुसार उन्हें नियमित रूपसे वहाँ ले जायँ, जहाँ कथा-वार्ता होती हो। अक्षमताकी दशामें उन्हें अकेला न छोड़ें।

७. श्रीमद्भगवद्गीता, रामायण तथा अन्य धार्मिक एवं आध्यात्मिक पुस्तकें, पत्र-पत्रिकाएँ उपलब्ध करवाकर उन्हें स्वाध्यायहेतु प्रेरित करें। उनकी असमर्थताकी दशामें परिवारके किसी व्यक्तिद्वारा उन्हें श्रवण कराना चाहिये।

८. अवस्था एवं शक्तिके अनुसार वर्षमें कम-से-

कम एक बार उन्हें तीर्थदर्शनहेतु अवश्य ले जायँ तथा सप्ताह/माहमें एक बार किसी धार्मिक स्थलपर अवश्य ले जायँ।

९. पराश्रित एवं वृद्धावस्थाके कारण यथासम्भव आवश्यकतानुसार तन, मन, धनसे उनकी सेवा-शुश्रूषामें कोई कसर न छोड़ें। अपनेपर उन्हें भारस्वरूप न मानें, यथासम्भव उन्हें नौकर अथवा पड़ोसीके आश्रित न होने दें। उन्हें पूर्ववत् जीवन जीनेके लिये प्रोत्साहित करते रहें।

१०. प्रेम देकर प्रेम, शान्ति देकर शान्ति एवं मान देकर मान प्राप्त करें। घृणा देकर घृणाकी ओर न बढ़ें।

११. प्रेम एवं विश्वासके साथ नन्हें-मुन्नोंको उनकी गोदमें डालते रहें। कुछ समय पूर्वतक संयुक्त परिवार होनेके फलस्वरूप बच्चे दादा-दादीके हाथों ही पलते रहे हैं और आज भी एकल/सीमित परिवारके साथ जीवनकी भागमभागमें उनकी वही उपयोगिता है, जो उन्हें व्यस्त भी रखेगी और पारिवारिक प्रेमसे ओतप्रोत भी।

१२. सामयिक जाँचके अनुसार रुग्णावस्थामें उनका यथाशीघ्र, यथाशक्ति, यथासमय उपयुक्त उपचारका अविलम्ब प्रबन्धकर समयपर दवा देनेका काम स्वयं अथवा परिवारमें जो भी सदस्य प्रसन्नतापूर्वक इस दायित्वका तत्परताके साथ निर्वहन कर सके, उससे करवायें। अधिक अस्वस्थताकी स्थितिमें स्मरण-शक्तिका ह्रास होता है, अतः औषधि लेना उनके भरोसे न छोड़ें। अधिक रुग्णावस्थामें उन्हें अकेला न छोड़ें। परिवारका कोई भी प्राणी उनके पास बना रहे।

१३. खान-पान, वस्त्र आदिमें उनकी इच्छाका ध्यान रखें, पथ्यापथ्यके पूर्ण विचारके साथ उन्हें भोजन, दूध, नाश्ता नियमित एवं निर्धारित समयपर देना अपेक्षित है। प्रत्येक समय बिना माँगे उनकी समुचित इच्छाओंकी पूर्ति करनेका प्रयास करें, इससे वे अपने आपको गौरवान्वित अनुभवकर आशीषोंका पिटारा खोलते रहेंगे।

१४. भूलकर भी कटाक्ष एवं कटुतापूर्ण शब्दोंका आदान-प्रदानकर उन्हें अतीतकी ओर न धकेलें। दुखी न करें। अवस्थानुसार उनके स्वभावका ध्यान रखकर शान्त रहें। उनके द्वारा पारिवारिक सामंजस्यकी आशा न रखते हुए परिवारके सभी सदस्योंको उनके साथ धैर्यपूर्वक सामंजस्य बनाना होगा।

१५. उनकी वैयक्तिक सम्पत्तिपर आपका ही अधिकार है, ऐसा मानकर भी वे उसका जैसे भी सदुपयोग करें, करने दें। दान-पुण्य करें तो करने दें। परिवारके किसी भी सदस्य अथवा बाहरके प्राणी, संस्था आदिको दें तो सहर्ष उनका सहयोग ही करें, विरोध नहीं करें। इस विचारधाराके साथ आप भी पुण्यके भागी होंगे तथा परिवारके सभी प्राणी अनावश्यक मनमुटावसे बच जायँगे। यह सब कार्य कर्तव्य-बुद्धिसे करें, कोई अहसान समझकर नहीं।

सबमें आत्मभाव

हुगलीके सरकारी वकील स्वर्गीय शशिभूषण वन्द्योपाध्याय एक दिन वैशाखके महीनेमें दोपहरकी कड़कती लूमें एक किरायेकी गाड़ीमें बैठकर एक प्रतिष्ठित व्यक्तिके घर पहुँचे। वे एक आवश्यक कार्यसे आये थे। उनका वहाँ स्वागत हुआ। फिर उस व्यक्तिने पूछा—'इस भयंकर दोपहरीमें आपने आनेका कष्ट क्यों किया? आप किसी नौकरके हाथ पत्र भेज देते तो भी यह काम हो जाता।'

श्रीशशिभूषणजीने कहा—'मैंने पहले नौकरको ही भेजनेका विचार किया था और पत्र भी लिख लिया था; किंतु बाहरकी प्रचण्ड गरमी तथा लू देखकर मैं किसी भी नौकरको भेजनेका साहस नहीं कर सका। मैं तो गाड़ीमें आया हूँ, उस बेचारेको तो पैदल आना पड़ता। उसमें भी तो वही आत्मा है, जो मुझमें है।'

हमारी प्राचीन वैमानिक-कला

(श्रीदामोदरजी झा, साहित्याचार्य)

वर्तमान समयसे कुछ दिनों पूर्वतक वैमानिक कला प्रायः नष्ट-सी हो गयी थी। बादमें पाश्चात्य विद्वानोंके बुद्धिविकाससे विमान फिर इस संसारमें दिखायी देने लगे हैं। कहा जाता है कि विमान नामकी कोई वस्तु पहले नहीं थी, बल्कि पक्षियोंको आकाशमें उड़ते देखकर भारतीयोंकी यह निरी कपोल-कल्पना थी कि विमान नामकी कोई वस्तु पहले देशमें थी, जो आकाशमें उड़ती थी एवं जिसका उल्लेख रामायणादि ग्रन्थोंमें पाया जाता है। महर्षि कर्दमके विमानके विषयमें भी उनकी यही धारणा है; किंतु आज भी हमारे समक्ष उदाहरणार्थ एक ऐसा ग्रन्थरत्न उपस्थित है, जिससे यह मानना पड़ेगा कि विमानके विषयमें हमारे पूर्वजोंने जिस उच्च-कोटिका वैज्ञानिक तत्त्व ढूँढ़ निकाला था, उसे आज भी पाश्चात्य विज्ञानवेत्ता खोज निकालनेमें असमर्थ ही हैं। वह ग्रन्थ है प्राचीनतम महर्षि भारद्वाजका बनाया हुआ 'यन्त्रसर्वस्व।'

यह ग्रन्थ बड़ौदा राज्यके पुस्तकालयमें हस्तलिखित वर्तमान है, जो कुछ खण्डित है। उसका 'वैमानिक प्रकरण' बोधानन्दकी बनायी हुई वृत्तिके साथ छप चुका है। इसके पहले प्रकरणमें प्राचीन विज्ञानविषयके पचीस ग्रन्थोंकी एक सूची है, जिनमें अगस्त्यकृत 'शक्तिसूत्र', ईश्वरकृत 'सौदामिनीकला', भारद्वाजकृत 'अंशुमत्तन्त्र', 'आकाशशास्त्र' तथा 'यन्त्रसर्वस्व', शाकटायनकृत 'वायुतत्त्वप्रकरण', नारदकृत 'वैश्वानरतन्त्र', 'धूमप्रकरण' आदि हैं। वृत्तिकार बोधानन्द लिखते हैं—

निर्मथ्य तद्वेदाम्बुधि भारद्वाजो महामुनिः।
नवनीतं समुद्धृत्य यन्त्रसर्वस्वरूपकम्॥
प्रायच्छत् सर्वलोकानामीप्सितार्थफलप्रदम्।
तस्मिन् चत्वारिंशतिकाधिकारे सम्प्रदर्शितम्॥
नानाविमानवैचित्र्यरचनाक्रमबोधकम् ।
अष्टाध्यायैर्विभजितं शताधिकरणैर्युतम्॥
सूत्रैः पञ्चशतैर्युक्तं व्योमयानप्रधानकम्।
वैमानिकाधिकरणमुक्तं भगवता स्वयम्॥

अर्थात् भारद्वाज महामुनिने वेदरूपी समुद्रका मन्थन करके यन्त्रसर्वस्व नामका ऐसा मक्खन निकाला है, जो मनुष्यमात्रके लिये इच्छित फल देनेवाला है। उसमें उन्होंने चालीसवें अधिकरणमें वैमानिक प्रकरण कहा है, जिस प्रकरणमें विमानविषयक रचनाके क्रम कहे गये हैं। वह आठ अध्यायमें विभाजित किया गया है, जिसमें एक सौ अधिकार और पाँच सौ सूत्र हैं। उसमें विमानका विषय ही प्रधान है।

एवं विधाय विधिवन्मङ्गलाचरणं मुनिः।
पूर्वाचार्यांश्च तद्ग्रन्थान् द्वितीयश्लोकतोऽब्रवीत्॥
विश्वनाथोक्तनामानि तेषां वक्ष्ये यथाक्रमम्।
नारायणः शौनकश्च गर्गो वाचस्पतिस्तथा॥
चाक्रायणिर्धुण्डिनाथश्चेति शास्त्रकृतः स्वयम्।
विमानचन्द्रिका व्योमयानतन्त्रस्तथैव च॥
यन्त्रकल्पो यानबिन्दुः खेटयानप्रदीपिका।
तथैव व्योमयानार्कप्रकाशश्चेति षट् क्रमात्।
नारायणादिमुनिभिः प्रोक्तानि ज्ञानवित्तमैः॥

अर्थात् भारद्वाजमुनिने इस तरह विधानपूर्वक मंगलाचरण करके दूसरे श्लोकमें विमानशास्त्रके पूर्वाचार्यों तथा उनके बनाये हुए ग्रन्थोंके नाम भी कहे हैं। उनके नाम विश्वनाथके कथनानुसार इस प्रकार हैं—नारायण, शौनक, गर्ग, वाचस्पति, चाक्रायणि और धुण्डिनाथ। ये छः ग्रन्थकार हैं तथा विमानचन्द्रिका, व्योमयानतन्त्र, यन्त्रकल्प, यानबिन्दु, खेटयानप्रदीपिका और व्योमयानार्क-प्रकाश—ये छः क्रमसे इनके बनाये हुए ग्रन्थ हैं।

विमानकी परिभाषा बतलाते हुए कहा गया है—

पृथिव्यप्स्वन्तरिक्षेषु खगवद्वेगतः स्वयम्।
यः समर्थो भवेद् गन्तुं स विमान इति स्मृतः॥

अर्थात् जो पृथ्वी, जल और आकाशमें पक्षियोंके

समान वेगपूर्वक चल सके, उसका नाम विमान है। **'रहस्यज्ञोऽधिकारी।'** (भरद्वाजसूत्र अ०१ सू०२)।

वृत्ति—

वैमानिकरहस्यानि यानि प्रोक्तानि शास्त्रतः।
द्वात्रिंशदिति तान्येव यानयन्तृत्वकर्मणि॥
एतेन यानयन्तृत्वे रहस्यज्ञानमन्तरा।
सूत्रेऽधिकारसंसिद्धिर्नेति सूत्रेण वर्णितम्॥
विमानरचने व्योमारोहणे चालने तथा।
स्तम्भने गमने चित्रगतिवेगादिनिर्णये॥
वैमानिकरहस्यार्थज्ञानसाधनमन्तरा।
यतोऽधिकारसंसिद्धिर्नेति सम्यग्विनिर्णितम्॥

विमानके रहस्योंको जाननेवाला ही उसके चलानेका अधिकारी है। शास्त्रोंमें जो बत्तीस वैमानिक रहस्य बतलाये गये हैं, विमानचालकोंको उनका भलीभाँति ज्ञान रखना परमावश्यक है और तभी वे सफल चालक कहे जा सकते हैं। सूत्रके अर्थसे यह सिद्ध हुआ कि रहस्य जाने बिना मनुष्य यान चलानेका अधिकारी नहीं हो सकता; क्योंकि विमान बनाना, उसे जमीनसे आकाशमें ले जाना, खड़ा करना, आगे बढ़ाना, टेढ़ी-मेढ़ी गतिसे चलाना या चक्कर लगाना और विमानके वेगको कम अथवा अधिक करना आदि वैमानिक रहस्योंका पूर्ण अनुभव हुए बिना यान चलाना असम्भव है।

विमान चलानेके जो बत्तीस रहस्य कहे गये हैं, उनमेंसे कुछ रहस्योंका यहाँ संक्षिप्त दिग्दर्शन कराया जा रहा है, जिनके द्वारा यह ज्ञात होता है कि पाश्चात्य विद्वानोंकी वैज्ञानिक कला प्राचीन भारतकी वैज्ञानिक कलासे कितनी पिछड़ी हुई है।

'कृतकरहस्यो नाम—विश्वकर्मछाया-पुरुषमनु-मयादिशास्त्रानुष्ठानद्वारा तत्तच्छक्त्यनुसन्धान-पूर्वकं तात्कालिकसङ्कल्पानुसारेण विमानरचनाक्रमरहस्यम्।'

अर्थात् उन बत्तीस रहस्योंमेंसे यह कृतक नामक तीसरा रहस्य है। विश्वकर्मा, छायापुरुष, मनु, मयदानव आदि विमानशास्त्रकारोंके बनाये हुए शास्त्रोंका अनुशीलन करनेसे उन-उन धातु-क्रिया आदिमें जो सामर्थ्य है—उसका अनुभव होनेपर इच्छाके अनुसार नवीन विमानरचना करनी चाहिये।

'गूढरहस्यो नाम—वायुतत्त्वप्रकरणोक्त-रीत्या वातस्तम्भाष्टमपरिधिरेखापथस्य यासावियासाप्रयासा-दिवातशक्तिभिः सूर्यकिरणान्तर्गततमशशक्ति-माकृष्य तत्संयोजनद्वारा विमानाच्छादनरहस्यम्।'

अर्थात् गूढ़ नामक पाँचवाँ रहस्य है। वायुतत्त्व-प्रकरणमें कही गयी रीतिके अनुसार वातस्तम्भकी जो आठवीं परिधिरेखा है, उस मार्गकी यासा, वियासा, प्रयासा इत्यादि वायुशक्तियोंके द्वारा सूर्यकिरणमें रहनेवाली जो अन्धकारशक्ति है, उसका आकर्षण करके विमानके साथ उसका सम्बन्ध करानेपर विमान छिप जाता है।

'अपरोक्षरहस्यो नाम—शक्तितन्त्रोक्त-रोहिणीविद्युत्प्रसारणेन विमानाभिमुखस्थवस्तूनां प्रत्यक्षनिदर्शनक्रियारहस्यम्।'

अर्थात् अपरोक्ष नामक नवें रहस्यके अनुसार शक्तितन्त्रमें कही गयी रोहिणी विद्युत् (विशेष प्रकारकी बिजली)-के फैलानेसे विमानके सामने आनेवाली वस्तुओंको प्रत्यक्ष देखा जा सकता है।

'सार्पगमनरहस्यो नाम—दण्डवक्रादिसप्त-विधमातरिश्वार्ककिरणशक्तीराकृष्य यानमुखस्थ-वक्रप्रसारणकेन्द्रमुखे नियोज्य पश्चात्तदाहृत्य शक्त्यु-द्गमननाले प्रवेशयेत्। ततः तत्कीलीचालनाद्विमानस्य सर्पवद्गमनक्रियारहस्यम्।'

अर्थात् सार्पगमन नामक बाईसवें रहस्यके अनुसार दण्ड, वक्र आदि सात प्रकारके वायु और सूर्यकिरणोंकी शक्तियोंका आकर्षण करके यानके मुखमें जो तिरछे फेंकनेवाला केन्द्र है, उसके मुखमें उन्हें नियुक्त करके पश्चात् उसे खींचकर शक्ति पैदा करनेवाले नालमें प्रवेश कराना चाहिये; तब उसके बटन दबानेसे विमानकी गति साँपके समान टेढ़ी हो जाती है।

'परशब्दग्राहकरहस्यो नाम—सौदामनीकलोक्त-प्रकारेण विमानस्थशब्दग्राहकयन्त्रद्वारा परविमानस्थ-जनसंभाषणादिसर्वशब्दाकर्षणरहस्यम्।'

अर्थात् परशब्दग्राहक पचीसवें रहस्यके अनुसार 'सौदामनीकला' में कही गयी रीतिसे विमानपर जो शब्दग्राहक यन्त्र है, उसके द्वारा दूसरे विमानपरके लोगोंकी बातचीत आदि शब्दोंका आकर्षण किया जाता है।

'रूपाकर्षणरहस्यो नाम—विमानस्थरूपाकर्षणयन्त्रद्वारा परविमानस्थितवस्तुरूपाकर्षणरहस्यम्।'

अर्थात् रूपाकर्षण नामक छब्बीसवें रहस्यके अनुसार विमानमें स्थित रूपाकर्षण-यन्त्रद्वारा दूसरे विमानमें रहनेवाली वस्तुओंका रूप दिखलायी देता है।

'दिक्प्रदर्शनरहस्यो नाम—विमानमुखकेन्द्रकीलीचालनेन दिशाम्पतियन्त्रनालपत्रद्वारा परयानागमनदिक्प्रदर्शनरहस्यम्।'

अर्थात् दिक्प्रदर्शन नामक अट्ठाईसवें रहस्यानुसार विमानके मुखकेन्द्रकी कीली (बटन) चलानेसे 'दिशाम्पति' नामक यन्त्रकी नलीमें रहनेवाली सुईद्वारा दूसरे विमानके आनेकी दिशा जानी जाती है।

'स्तब्धकरहस्यो नाम—विमानोत्तरपार्श्वस्थसन्धिमुखनालादपस्मारधूमं संग्राह्य स्तम्भन-यन्त्रद्वारा तद्धूमप्रसारणात् परविमानस्थसर्वजनानां स्तब्धीकरणरहस्यम्।'

स्तब्धक नामके इकतीसवें रहस्यके अनुसार विमानकी बायीं बगलमें रहनेवाली सन्धिमुख नामकी नलीके द्वारा अपस्मारनामक (किसी विशेष छेदसे निकलनेवाले) धूएँको इकट्ठा करके स्तम्भनयन्त्रद्वारा दूसरे विमानपर फेंकनेसे उस दूसरे विमानमें रहनेवाले सब व्यक्ति स्तब्ध (बेहोश) हो जाते हैं।

'कर्षणरहस्यो नाम—स्वविमानसंहारार्थं परविमानपरम्परागमने विमानाभिमुखस्थवैश्वानरनालान्तर्गतज्वालिनीप्रज्वालनं कृत्वा सप्ताशीतिलिङ्क-प्रमाणोष्णं यथा भवेत् तथा चक्रद्वयकीलीचालनात् शत्रुविमानोपरि वर्तुलाकारेण तच्छक्तिप्रसारणद्वारा शत्रुविमाननाशनक्रियारहस्यम्।'

अर्थात् कर्षण नामक बत्तीसवाँ रहस्य है। उससे अपने विमानका नाश करनेके लिये शत्रुविमानोंके आनेपर विमानके मुखमें रहनेवाली वैश्वानर नामकी नलीमें ज्वालिनी (किसी गैसका नाम)-को जलाकर सत्तासी लिङ्क प्रमाण (लिङ्क डिग्रीकी तरह किसी मापका नाम है) गर्मी हो, उतना दोनों चक्कीकी कीली (बटन) चलाकर शत्रु-विमानोंपर गोलाकारसे उस शक्तिको फैलानेसे शत्रुके विमान नष्ट हो जाते हैं।

इस वैमानिक प्रकरणमें कहे गये ग्रन्थ और ग्रन्थकारोंके नामसे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि हमारे पूर्वज विमानशास्त्रमें अत्यन्त निपुण थे। इसके रहस्योंको देखनेसे यह पता लगता है कि आजकलके वैज्ञानिक विमानद्वारा जिन-जिन कलाओंका उपयोग करते हैं, वे सभी कलाएँ तो उन लोगोंके पास थीं ही, बल्कि जिन कलाओंकी खोजमें आज आधुनिक वैज्ञानिक व्यस्त हैं या जिनकी कल्पना भी अभी वे नहीं कर पाये हैं, उनको भी हमारे पूर्वज जानते थे। नवें रहस्यसे यह पता लगता है कि दूरबीनकी तरह कोई दूरदर्शक यन्त्र उनके पास था। पचीसवें रहस्यसे यह सिद्ध होता है कि 'वायरलेस', रेडियो भी उनके पास था। अट्ठाईसवाँ रहस्य बतलाता है कि आजकलके वैज्ञानिकोंकी तरह दूरसे ही शत्रुविमानका पता लगा लेनेकी कला भी उनके पास थी। बत्तीसवें रहस्यसे यह स्पष्ट है कि जैसे ये लोग गैस, बम आदिद्वारा शत्रु-संहार करते हैं, वैसे ही वे लोग भी ऐसे शस्त्रास्त्रोंका उपयोग करते थे। छब्बीसवें रहस्यसे मालूम होता है कि आजके वैज्ञानिकोंने टेलीफोनपर बात करनेवालेकी आकृति दिखा देनेवाले 'टेलीविजन' नामक जिस यन्त्रका आविष्कार किया है, वह इससे अधिक चमत्कारिक रूपमें हमारे पूर्वजोंके पास था। इसमें जो विमानोंको अदृश्य करनेवाला पाँचवाँ रहस्य है तथा उसके सदृश अन्य कई रहस्य हैं जो कि विस्तारभयसे यहाँ उद्धृत नहीं किये गये हैं, उन सबके विषयमें आजके वैज्ञानिक हमारी समझमें अभीतक सोच भी नहीं सके हैं। 'सिद्धान्त'

एक पलके सत्संगसे प्रभुप्राप्ति

(डॉ० श्रीभीकमचन्दजी प्रजापति)

सत्संग कितनी देर—पूरे जीवनमें यदि आप एक लवका सत्संग कर लें तो आपको भगवान्के दर्शन हो जायेंगे, आप भगवान्के परम भक्त बन जायेंगे। लवका अर्थ है—एक सेकेण्डसे भी बहुत छोटा समय। सेकेण्डसे छोटा होता है पल, पलसे छोटा होता है लव, लवसे छोटा होता है निमिष। श्रीरामचरितमानसमें आया है—

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥

(रा०च०मा० ५। ४)

इसका अर्थ है—हे तात! स्वर्ग और मोक्षके सब सुखोंको तराजूके एक पलड़ेमें रखा जाय, तो भी वे सब मिलकर (दूसरे पलड़ेपर रखे हुए) उस सुखके बराबर नहीं हो सकते, जो लवमात्रके सत्संगसे होता है।

सत्संगका आशय—चार शब्द हैं—सच्चर्चा, सच्चिन्तन, सत्कार्य, सत्संग। दो या दो-से अधिक साधक प्रभुप्राप्तिके लिये जो बातचीत, विचार-विनिमय करते हैं, उसका नाम है सच्चर्चा। आप अकेले बैठकर प्रभुप्राप्तिके लिये जो साधना करते हैं, उसका नाम है सच्चिन्तन। दूसरोंके सुख, हित, कल्याणके लिये जो कार्य करते हैं, उनका नाम है सत्कार्य। यदि आप ये तीनों सुख, सुविधा, सम्मान, भोग-सामग्री प्राप्त करनेके उद्देश्यसे करेंगे तो आपको साधनामें विशेष लाभ नहीं होगा, अपितु आप नाशवान् संसारमें फँस जायँगे। यदि आप सच्चर्चा, सच्चिन्तन, सत्कार्य प्रभुप्राप्तिके उद्देश्यसे करेंगे तो आपको काफी लाभ होगा, लेकिन जबतक आप सत्संग नहीं करेंगे, तबतक आपको पूरा लाभ नहीं मिलेगा, मानव जीवनकी पूर्णता नहीं होगी।

सत्संगका अर्थ है—सच्ची बातको मान लेना। माननेका अर्थ है—वह बात हर समय स्वतः याद रहना और उसीके अनुरूप स्वतः आचरण होना। उदाहरण लीजिये—आपने एक बार यह मान लिया—यह महिला मेरी पत्नी है, यह माँ है, यह बहन है, यह बेटी है तो यह बात आपको स्वतः याद रहेगी और मान्यताके अनुरूप स्वतः आपका व्यवहार होगा। यह आपके जीवनका अनुभव है।

मानना क्रिया नहीं है। माननेमें पराधीनता, परिश्रम, अभ्यास अपेक्षित नहीं है। माननेमें एक पल भी नहीं लगता है। आपकी शादी हुई, आपने मान लिया—ये मेरे पति हैं, यह मेरी पत्नी है। पुत्र हुआ, आपने मान लिया—यह हमारा बेटा है। मानना अत्यन्त सरल है।

सच्ची बातें—सच्ची बातें अनेक हैं। यदि आप किसी एक बातको मान लेंगे तो आपको जबरदस्त लाभ होगा और अन्य सच्ची बातोंको आप आसानीसे मान पायेंगे। मुख्य सच्ची बातों एवं इनके माननेके प्रभावका विवरण इस प्रकार है—

(१) जगत् मिथ्या है—जगत् क्या है? उत्तर है—परिवर्तनका पुंज सम्पूर्ण जड़-चेतन जगत् प्रति पल बदल रहा है और मौतके मुँहमें जा रहा है, उसका हर क्षण विनाश हो रहा है। यह कहीं भी स्थिर नहीं रहा। इसलिये विवेक दृष्टिसे यह एकदम मिथ्या है, स्वप्नवत् है। सपनेमें सब कुछ सत्य भासित होता है, जागते ही गायब हो जाता है। श्रीरामचरितमानसमें आया है—

सपनें होइ भिखारि नृपु रंकु नाकपति होइ।
जागें लाभु न हानि कछु तिमि प्रपंच जियँ जोइ॥

(रा०च०मा० २। ९२)

इसका अर्थ है—जैसे स्वप्नमें राजा भिखारी हो जाय अथवा कंगाल स्वर्गका स्वामी इन्द्र हो जाय तो जागनेपर लाभ या हानि कुछ भी नहीं है; वैसे ही इस दृश्य-प्रपंचको हृदयसे देखना चाहिये।

इसको माननेके निम्नलिखित प्रभाव होंगे—किसी भी वस्तु, व्यक्ति, अपने शरीर आदिमें आपकी ममता नहीं होगी। किसीके बनने-बिगड़नेमें आपको सुख-दुःख नहीं होगा।

(२) जगत् प्रभुका स्वरूप है—श्रीमद्भगवद्गीतामें

भगवान्‌की वाणी है—

मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥

(७।७)

'वासुदेवः सर्वमिति.....॥' (७।१९)

इसका अर्थ है—हे धनञ्जय! मुझसे भिन्न दूसरा कोई भी परम कारण नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत् सूत्रमें सूत्रके मनियोंके सदृश मुझमें गुँथा हुआ है। सब कुछ वासुदेव ही है।

संतवाणी है—

सब जग ईस्वर रूप है भलो बुरो नहिं कोय।
जाके जैसी भावना वैसो ही फल होय॥

श्रीरामचरितमानसमें आया है—

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥

(रा०च०मा० १।१८५।५)

इसका अर्थ है—मैं तो यह जानता हूँ कि भगवान् सब जगह समान रूपसे व्यापक हैं, प्रेमसे वे प्रकट हो जाते हैं।

सत्य यही है—इस जगत्‌में विभिन्नरूपोंमें केवल भगवान् हैं। प्रेम देनेसे वे उसी रूपमें प्रकट हो जाते हैं, जिस रूपमें आप उनके दर्शन करना चाहते हैं। इस बातको माननेके निम्न प्रभाव होंगे—आप किसीको दु:ख नहीं देंगे, किसीका अपमान नहीं करेंगे, किसीके साथ लड़ाई नहीं करेंगे, किसीपर क्रोध नहीं करेंगे। सबको सुख, सुविधा, सम्मान, प्रसन्नता देंगे। किसीके साथ व्यवहार करनेपर आपको यह बात याद रहेगी—ये मेरे प्रभु हैं।

(३) भगवान् मालिक हैं—इस जगत्‌को बनाने, चलाने, इसपर नियन्त्रण करनेवाले भगवान् हैं। उन्होंने जगत्‌की केवल तीन चीजें आपको सौंपी हैं—शरीर; निकट परिवारजन जैसे—पति, पत्नी, संतान आदि; सामान-सम्पत्ति। इन तीनोंके मालिक भी भगवान् हैं। भगवान्‌ने अपना प्रेमी भक्त बनानेके लिये मुझे ये चीजें सौंपी हैं।

श्रीरामचरितमानसमें भगवान्‌की वाणी है—

जननी जनक बंधु सुत दारा। तनु धनु भवन सुहृद परिवारा॥
सब कै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बाँध बरि डोरी॥

(रा०च०मा० ५।४८।४-५)

इसका अर्थ है—माता, पिता, भाई, पुत्र, स्त्री, शरीर, धन, घर, मित्र और परिवार—इन सबके ममतारूपी तागोंको बटोरकर और उन सबकी एक डोरी बटकर उसके द्वारा अपने मनको मेरे चरणोंमें बाँध दे।

भक्त कैसे बनें? उत्तर है—शरीरको भगवान्‌का मेहमान, परिवारजनोंको भगवान्‌के स्वरूप मानकर इनकी भरपूर सेवा करें, इनको प्रेम दें। सामान-सम्पत्तिको भगवान्‌की धरोहर मानकर सँभालो एवं इसका सदुपयोग करो। ये सब करो भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये, आप भक्त बन जायँगे। इसको माननेके निम्न प्रभाव होंगे—आपकी चिन्ता मिट जायगी, शरीर नीरोग रहेगा, परिवारमें शान्ति रहेगी, परिवारजनोंमें प्रभुके दर्शन हो जायँगे।

(४) भगवान् एवं माया करवाती है—इस संसारका कोई भी व्यक्ति अपनी तरफसे कुछ भी नहीं करता है; सबको सब कुछ भगवान् ही करवाते हैं अथवा भगवान्‌की माया करवाती है। श्रीरामचरितमानसमें आया है—

बोले बिहसि महेस तब ग्यानी मूढ़ न कोइ।
जेहि जस रघुपति करहिं जब सो तस तेहि छन होइ॥

(रा०च०मा० १।१२४क)

उमा दारु जोषित की नाईं। सबहि नचावत रामु गोसाईं॥
नट मरकट इव सबहि नचावत। रामु खगेस बेद अस गावत॥

(रा०च०मा० ४।११।७, ४।७।२४)

लाग न उर उपदेसु जदपि कहेउ सिवँ बार बहु।
बोले बिहसि महेसु हरिमाया बलु जानि जियँ॥
निज माया बलु हृदयँ बखानी। बोले बिहसि रामु मृदु बानी॥
बहुरि राममायहि सिरु नावा। प्रेरि सतिहि जेहिं झूँठ कहावा॥

(रा०च०मा० १।५१, १।५३।६, १।५६।५)

इनका अर्थ इस प्रकार है—तब महादेवजीने हँसकर

कहा—न कोई ज्ञानी है न मूर्ख। श्रीरघुनाथजी जब जिसको जैसा करते हैं, वह उसी क्षण वैसा ही हो जाता है।

(शिवजी कहते हैं)—हे उमा! स्वामी श्रीरामजी सबको कठपुतलीकी तरह नचाते हैं।

(काकभुशुण्डिजी कहते हैं)—हे पक्षियोंके राजा गरुड़जी! नट (मदारी)-के बन्दरकी तरह श्रीरामजी सबको नचाते हैं, वेद ऐसा कहते हैं।

यद्यपि शिवजीने बहुत बार समझाया, फिर भी सतीके हृदयमें उनका उपदेश नहीं बैठा। तब महादेवजी मनमें भगवान्‌की मायाका बल जानकर मुसकराते हुए बोले।

अपनी मायाके बलको हृदयमें बखानकर श्रीरामचन्द्रजी हँसकर कोमल वाणीसे बोले।

फिर श्रीरामचन्द्रजीकी मायाको सिर नवाया, जिसने प्रेरणा करके सतीके मुँहसे भी झूठ कहला दिया।

स्पष्ट है, सबको सब कुछ भगवान् या उनकी माया करवाती है, लेकिन अहंकारी व्यक्ति यह मान लेता है कि 'मैं करता हूँ'। इस मान्यताके कारण वह कर्म बन्धनमें बँध जाता है, फिर उसीको कर्मफल भोगना पड़ता है। श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान्‌की वाणी है—

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते॥

(३। २७)

अर्थात् वास्तवमें सम्पूर्ण कर्म सब प्रकारसे प्रकृतिके गुणोंद्वारा किये जाते हैं तो भी जिसका अन्त:करण अहंकारसे मोहित हो रहा है, ऐसा अज्ञानी 'मैं कर्ता हूँ', ऐसा मानता है।

इसको माननेके निम्न प्रभाव होंगे—आप कर्म-बन्धनसे मुक्त हो जायँगे। दूसरे आपसे अच्छा एवं खराब व्यवहार करेंगे तो आप राग-द्वेषमें नहीं फँसेंगे।

(५) कोई आपका नुकसान नहीं करता है, दुःख नहीं देता है—कोई भी परिवारजन, रिश्तेदार, मित्र न आपका नुकसान करता है, न आपको दुःख देता है। वह नुकसान कर ही नहीं सकता, दुःख दे ही नहीं सकता। नुकसान दो प्रकारका होता है—शारीरिक नुकसान अर्थात् शरीरको चोट पहुँचाना; आर्थिक नुकसान अर्थात् रुपये, धन, जमीन आदिका नुकसान। नुकसान होने एवं आपके साथ अपमानजनक व्यवहार करनेपर आपको मनमें अशान्ति, चिन्ता एवं तनाव हो जाता है—इसका नाम है—दुःख। कोई भी व्यक्ति आपको न तो दुःख देता है, न दे सकता है। आपको होनेवाले शारीरिक और आर्थिक नुकसानके नौ कारण हैं—आपके कर्म, आपका भाग्य, आपका प्रारब्ध, आपकी ग्रहदशा, आपकी असावधानी, होनहार, दैवदोष-पितृदोष, विधिका विधान, भगवान्। आपको होनेवाले दुःखका कारण आपकी अपनी पाँच भूलें हैं—पराधीनता; शरीर, स्वजन, सम्पत्तिमें आपका मोह; 'शरीर' को 'मैं' मान लेना; अपने इस सत्य स्वरूपको भूल जाना कि 'मैं' भगवान्‌का अंश हूँ, अमर आत्मा हूँ—भगवान्‌में आपका कमजोर विश्वास।

जब नुकसान करनेवाला आपको दिखायी नहीं देता है तब तो आप भी यही सोचते हैं कि मेरा नुकसान किसीने नहीं किया है, नौ-मेंसे किसी कारणसे हुआ है। जब वह दिख जाता है, तब आप सोचते हैं—इसीने मेरा नुकसान किया है। फिर उसपर आपको क्रोध आता है। दिखनेपर भी आपके विवेक एवं विश्वासके आधारपर यह सोचना है—इसने नुकसान नहीं किया है। भगवान् श्रीरामको वनवास दिया माँ कैकेयीने, लेकिन रामजीके किसी भी परिवारजनने माँ कैकेयीको दोषी नहीं माना। स्वयं श्रीरामजीने 'काल, कर्म, विधि, भगवान्' को दोषी माना। सीताजीने 'दैव', कौसल्याजी एवं लक्ष्मणजीने 'कर्म', माँ सुमित्रा एवं भरतजीने 'विधि', दशरथजीने 'काल', वसिष्ठजीने 'होनहार एवं विधि' को दोषी माना। श्रीरामचरितमानसमें आया है—

पग परि कीन्ह प्रबोधु बहोरी। काल करम बिधि सिर धरि खोरी॥
भेटीं रघुबर मातु सब करि प्रबोधु परितोषु।
अंब ईस आधीन जगु काहु न देइअ दोषु॥

सेवा समय दैअँ बनु दीन्हा। मोर मनोरथु सफल न कीन्हा॥
कौसल्या कह दोसु न काहू। करम बिबस दुख सुख छति लाहू॥
काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निज कृत करम भोग सबु भ्राता॥

(रा०च०मा० २।२४४।८, २।२४४, २।६९।४, २।२८२।३, २।९२।४)

पाँच भूलोंका वर्णन भी श्रीरामचरितमानसमें आया है—

कत बिधि सृजीं नारि जग माहीं। पराधीन सपनेहुँ सुखु नाहीं॥
मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला। तिन्ह ते पुनि उपजेहिं बहु सूला॥
छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम सरीरा॥
ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी॥
उपजइ राम चरन बिस्वासा। भव निधि तर नर बिनहिं प्रयासा॥

(रा०च०मा १।१०२।५, ७।१२१।२९, ४।११।४; ७।११७।२, ७।५५।९)

इस बातको माननेके निम्नलिखित प्रभाव होंगे—आपको उस स्वजन—उस व्यक्तिपर भी क्रोध नहीं आयेगा, जो आपका नुकसान करेगा, आपको दुःख देगा। आप किसीको बुरा नहीं समझेंगे, किसीका बुरा नहीं सोचेंगे, किसीका बुरा नहीं करेंगे। किसीसे कभी भी आपकी लड़ाई नहीं होगी। सबके प्रति प्रेम रहेगा।

(६) नाममें अनन्त शक्ति— भगवान्‌के नाममें अनन्त शक्ति है। नामकी अपार महिमा है। नामसे सब कुछ सम्भव है। श्रीरामचरितमानसमें आया है—

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥
बिबसहुँ जासु नाम नर कहहीं। जनम अनेक रचित अघ दहहीं॥
बारक राम कहत जग जेऊ। होत तरन तारन नर तेऊ॥
जासु नाम सुमिरत एक बारा। उतरहिं नर भवसिंधु अपारा॥

(रा०च०मा० १।२८।१, १।११९।३, २।२१७।४, २।१०१।३)

भाव यह है—भगवान्‌का नाम कैसे ही लें, उससे दसों दिशाओंमें मंगल ही होगा। विवशतासे भी यदि कोई भगवान्‌का नाम ले ले तो उसके अनेक जन्मोंके पाप जल जाते हैं। इस जगत्‌में जो एक बार 'राम' कह देते हैं, वे तरने-तारनेवाले हो जाते हैं। एक बार नामका स्मरण करते ही अपार भवसागरके पार उतर जाते हैं।

इस बातको माननेके निम्नलिखित प्रभाव होंगे—नाम-जपमें गहरी लगन हो जायगी, नाम-जप आपका जीवन बन जायगा, नामकी स्मृति बनी रहेगी, हृदय आनन्दसे भरा रहेगा।

(७) विधान मंगलकारी— अपनी तरफसे बुद्धि और विवेककी सीमातक पूरी सावधानी रखनेके बाद भी आपके जीवनमें जिस प्रतिकूल परिस्थितिका निर्माण हो जाता है, उसका नाम है—भगवान्‌का विधान। भगवान्‌का विधान सदैव हितकारी—मंगलकारी ही होता है। भगवान् आपके सच्चे माता-पिता हैं। वे आपके अहितकी बात सोच ही नहीं सकते, करेंगे कैसे? उनके द्वारा भेजी गयी प्रतिकूलता तो उनके द्वारा किया जानेवाला ऑपरेशन है। ऑपरेशनसे वे आपकी गन्दगीको बाहर निकालकर आपको शुद्ध एवं नीरोग बनाते हैं। आपकी गन्दगी है, आपकी पाँच भूलें, जिनका विवेचन ऊपर बिन्दु-संख्या पाँचमें किया गया है—पराधीनता, मोह आदि। प्रतिकूलता आपके दुःखका कारण नहीं है। आपकी पाँच भूलें ही आपको दुःख देती हैं। भगवान् इनको मिटानेकी प्रेरणा देते हैं।

इस बातको माननेके बाद आपको न तो प्रतिकूलताका भय लगेगा, न उसके आनेपर दुःख होगा।

(८) महिमा— भगवान् सदैव हैं, सबके हैं, सबमें हैं, सर्वत्र हैं, सर्वज्ञ हैं, सर्वशक्तिमान् हैं, परम सुहृद हैं, पतितपावन हैं, करुणासागर हैं, मेरे सच्चे माता-पिता हैं। भगवान्‌की इस महिमाको मानते ही आप निश्चिन्त, निर्भय, निडर, निर्मल, निर्विकार, निर्मम, निष्काम, निर्वैर, निरभिमान हो जायँगे।

इन सच्ची बातोंको माननेका प्रभाव होगा—परम शान्ति, जीवन्मुक्ति, भगवद्भक्ति, भगवत्प्रेम। यही मानव जीवनकी पूर्णता है।

कहानी—

समाजकी सेवा

(श्री'चक्र')

[१]

वे विद्यापीठके स्नातक हैं। विद्यापीठकी शिक्षाकी सफलता ही है समाज-सेवामें। देश-सेवाकी प्रबल प्रेरणाने ही इस संस्थाकी नींव रखी और देशके स्वाधीनता-संग्राममें इसके शिक्षकों एवं छात्रोंने कितना बलिदान किया, यह तो देश भली प्रकार जानता ही है। वे उस गौरवमयी संस्थाके स्नातक हैं। देश-सेवा उनका स्वभावगत गुण होना ही चाहिये।

दुबला-पतला साँवला शरीर, हँसता-सा गोल मुख, घुँघराले सँवारे केश, नेत्रोंपर चश्मा, कलाईमें बँधी घड़ी, पैरोंमें चप्पल—दूध-सी उजली सफेद खादी तो समाज-सेवकका पवित्र वस्त्र है। आप उन्हें एक बार देख लें तो सहज ही भूल नहीं सकते। बड़ा मिलनसार स्वभाव है। बड़ी विलक्षण प्रतिभा है। वक्तृत्व-शक्तिकी तो पूछिये ही मत। जिसमें वक्ता बननेकी योग्यता नहीं होगी, वह समाजकी सेवा कैसे करेगा। वे तो साधारण बातचीतमें भी चुटकियाँ लेते, उपदेश देते, व्याख्यानसे ही देते चलते हैं।

बलिदान—देशके लिये बलिदानकी पुकार गूँजती थी उनके कानोंमें। आज नहीं गूँजती सो मैं नहीं कहता; किंतु उस समय युग ही दूसरा था। लाठी, गोली, जेल—विदेशी सरकार अपनी पूरी शक्तिसे दमनपर उतर आयी थी। देशने चुनौती स्वीकार कर ली थी। वे उस समय एक पूरे जिलेके आन्दोलनका नेतृत्व कर रहे थे। पूरे तीन बार उन्हें जेल जाना पड़ा। कोई ऐसी कठिनाई नहीं, जिसे उन्होंने न उठाया हो।

आजकी बात अब दूसरी है। आज वे चाहते तो किसी उच्च पदपर होते। मित्रोंने उनसे चुनावमें खड़े होनेका आग्रह भी किया था और सफलता तो निश्चित ही थी। वे प्रारम्भसे विचित्र स्वभावके रहे हैं। मित्रोंको उन्होंने दो टूक उत्तर दे दिया—'मैं शासक नहीं, सेवक रहा हूँ। सेवक ही रहना चाहता हूँ।'

'वहाँ आप अधिक सेवा कर सकेंगे।' यह तर्क भी आया था। इसकी उपयोगिता और महत्ता वे न समझते हों, ऐसा नहीं है; किंतु उनका निश्चय कभी ढीला नहीं पड़ा करता। उनका दृष्टिकोण भी महत्त्वपूर्ण है—'जनताको अधिकारियोंसे भी अधिक उस सेवककी अपेक्षा है, जो उसके बीच रहकर उसकी सेवा करे।'

'जनताके बीच रहकर जनताकी सेवा।' यहाँसे वहाँ दौरा करने और व्याख्यान देनेको ही तो जन-सेवा कहा जाता है। समाजकी सेवाका दूसरा क्या रूप हो सकता है? यह रूप आवश्यक नहीं है, महत्त्वपूर्ण नहीं है, यह कहेगा भी कौन।

'जनताको, देशको आज नेता नहीं, अच्छे नागरिक चाहिये।' उन्होंने स्वयं भी अपने सम्मान्य नेताकी इस पुकारको कई बार दुहराया है। आज ही क्यों उनके मनमें यह आ रहा है—'तू भी तो नेता है?' 'आपलोग सेवक हैं या नेता?' एकने एक दिन पूछा था उनसे 'यह सेवकका वेश है? आप क्या सोचते हैं कि व्याख्यान देते घूमनेसे समाजकी सेवा हो जाती है?'

'हमारी सेवा साधारण घरेलू सेवकसे दूसरे प्रकारकी है?' उस दिन उन्होंने हँसकर उत्तर दे दिया था—'हम स्वच्छता, सावधानी, अनुशासन, विद्याका प्रचार करते हैं। स्वयं हम इन्हें न रखें तो लोग सीखेंगे कैसे? हम जनताके विचारोंको जाग्रत् एवं परिमार्जित करते हैं। ठीक दिशा दिखाना और उधर चलनेकी प्रेरणा देना हमारा काम है। यही हमारी सेवा है। जन-जागरणसे अधिक महत्त्वकी समाज-सेवा और क्या होगी?'

कोई उनसे बहस करके कहाँ पार पा सकता है। लोगोंके अटपटे तर्कोंका उत्तर देना तो उनकी सेवाका एक मुख्य अंग ही है, लेकिन बूढ़े महात्माजीने जो आत्मनिरीक्षण, आत्मशोधनकी प्रबल प्रेरणा दी थी—

किसी दूसरेने उसे कितना ग्रहण किया, यह कहना तो कठिन है; किंतु उन्होंने उसे बड़ी गम्भीरतासे ग्रहण किया था। वह प्रेरणा ही उन्हें राजनीतिक क्षेत्रमें ले आयी थी, यह कहना कुछ असंगत नहीं होगा। समाज-सेवाको उन्होंने एक साधन माना था आत्मशुद्धिका। वे देश-सेवा—जनता-जनार्दनकी सेवा करने आये थे। वह आत्मशोधनकी प्रेरणा उनके भीतर कभी मन्द भले पड़ी हो, प्रसुप्त नहीं हुई और आज पता नहीं क्यों वह जग पड़ी है।

'व्याख्यान देनेसे ही समाजका कल्याण हो जायगा? यही समाज-सेवा है?' एक दिन ऐसे प्रश्नोंका वे हँसकर उत्तर देते थे। आज जब कोई प्रश्नकर्ता नहीं है, आज जब सर्वत्र उनके स्वागतमें भीड़ जयध्वनि करती, मालाएँ सजाये खड़ी रहती है, यह प्रश्न उनके मनमें प्रबल क्यों होता जा रहा है? उनके भीतर बैठकर कौन उनसे इतने तीखे स्वरमें बार-बार पूछता है, इसका कोई समाधान वे कर नहीं पाते।

'हम स्वच्छता, सावधानी, अनुशासनका प्रचार करते हैं। हम स्वयं इन्हें न रखें तो लोग सीखेंगे कैसे।' आज उनका यह स्वयंका उत्तर जैसे उनके मस्तिष्कमें धधककर जल उठा है।

'कितनोंने हमारे व्याख्यानोंसे स्वच्छताकी शिक्षा ली? कितनोंने सावधानी सीखी? कितनोंने अनुशासनका पालन करना अपनाया?' निराशासे सिर झुक गया उनका।

'स्वयंसेवक मेरे-जैसे बाल रखते हैं। मेरे समान नंगे सिर रहते हैं। यही चप्पल पहनते हैं। यह घड़ी न सही—घड़ी बाँधते हैं।' उन्होंने कभी इस बातपर गर्व किया था कि लोग रहन-सहनमें उनका अनुकरण करने लगे हैं। उनके-जैसी धोती पहनना, वैसा ही कुरता बनवाना, कुर्तेके ऊपरका बटन उन्हींके समान खुला रखना—अब तो ग्रामोंके साधारण लोग भी कुछ बातोंमें उनका अनुकरण करते हैं।

'उनमें अनेक त्रुटियाँ हैं। वे बोलनेमें कुछ गर्दन एक ओर झुकाकर बोलते हैं, चलनेमें हाथ अधिक हिलाते हैं। हाथ धोनेमें..........रहने दीजिये त्रुटियोंकी बात। त्रुटियाँ किसमें नहीं होतीं; किंतु यह है क्या? उनकी त्रुटियाँ इतनी व्यापक क्यों होती जा रही हैं? लोग त्रुटियोंमें उनकी ठीक-ठीक क्यों नकल करते हैं?'

'मैं क्या कर रहा हूँ? मुझसे समाजकी कौन-सी सेवा हो रही है?' वे सिर पकड़कर बैठ गये हैं आज। 'उनके उपदेशों, व्याख्यानोंका क्या प्रभाव? उन्होंने समाजको दोष—अपने दोष ही तो बाँटे। लोगोंने उनके दोष-ही-दोष लिये!'

व्यापक—व्यापक होते जा रहे हैं उनके दोष। जैसे सम्पूर्ण दिशाएँ, पूरा आकाश मैला, घिनौना होता जा रहा है उनके दोषोंसे। उन्होंने नेत्रोंपर हाथ रख लिये। कोई वज्र-कर्कश स्वरमें पूछ रहा है उनसे—'तू समाजका सेवक है? समाजकी सेवा की है तूने? यही है तेरी समाज-सेवा?'

क्या उत्तर है उनके पास। उनके नेत्र आज इस एकान्तमें टपाटप बूँदें गिराते जा रहे हैं।

× × ×

[२]

वह भी विद्यापीठका स्नातक है। बूढ़े महात्माजीकी वाणीपर उसकी निष्ठा विद्यापीठमें प्रवेश करनेसे बहुत पहलेसे रही है। महात्माजीकी अहिंसा और आत्मशोधनकी प्रेरणाने उसे भी बहुत आकर्षित किया। आत्मशुद्धिकी धुन उसकी बहुत पुरानी है।

दुबला-पतला कुछ ललाई लिये गेंहुआँ गोरा शरीर, गम्भीर गोल मुख, घुटा सिर, बड़ी-सी चुटिया, नंगे बिवाईभरे पैर, खादीका मटमैला कुर्ता, खूब मोटी कुछ मैली धोती—उसे विद्यापीठमें उसके सहपाठी सदा चिढ़ाते रहे हैं। अर्थशास्त्र और राजनीतिके बदले वह दर्शनशास्त्र और संस्कृतका छात्र था। चमड़ेकी चप्पलके स्थानपर लकड़ीकी चट्टियाँ पहनता था। उसकी चुटिया

और जनेऊका बड़ा उपहास हुआ, लेकिन बड़ा गम्भीर है वह। बहुत कम हँसता है। जब धीरेसे तनिक-सा हँसता है—जैसे मोती बिखर पड़े हों। उसकी गम्भीरता ऐसी है कि उसका उपहास करके उपहास करनेवाला ही संकुचित हो उठता है। वह पूरे विद्यापीठ-जीवनमें वैसे-का-वैसा ही रहा आया था। उसकी एक मण्डली बन गयी थी धीरे-धीरे। यह उसीकी गम्भीरताका प्रभाव था कि विद्यापीठमें भी कुछ दिन कुछ छात्र बड़ी चुटिया रखने और सन्ध्या करने लगे थे।

समाजकी सेवा आत्मशुद्धिका साधन है, यह बात उसे कुछ ठीक-ठीक जमी नहीं, लेकिन महात्माजीने देश-सेवा, समाज-सेवाकी प्रेरणा दी, वह प्रेरणा उसके हृदयमें भी बस गयी थी, लेकिन वह वक्ता नहीं है। वह तो साधारण बातचीतमें भी शब्दोंको इतना तौल-तौलकर मुखसे निकालता है, जैसे कोई बहुत बड़ी सम्पत्ति व्यय कर रहा हो। दस शब्दका काम चारमें चल सके तो वह साढ़े चार बोलनेवाला नहीं। जो वक्ता नहीं, वह भला नेता कैसे होगा और जो नेता नहीं, पुलिस उसके पीछे कभी क्यों पड़ेगी। देशके इतने महान् संघर्षमें भी उसकी बात किसीने नहीं पूछी। वह जेल नहीं गया, उसे किसीने एक धक्कातक नहीं दिया। आज जब चारों ओर धूम है, आज भी उसे कोई पूछनेवाला नहीं। वह कभी नेता तो था ही नहीं।

विद्यापीठसे वह अपने घर चला आया। घरपर खेतीके काममें जुट गया। वह कुट्टी काटता है, घास छीलता है, खेतमें खाद अपने सिरपर उठाकर ले जाता है। विद्यापीठका स्नातक है वह, यह तो जाननेवाले जानते हैं। एक उद्योगी किसान है वह, यह देखते ही समझा जा सकता है।

दोपहर-विश्रामके समय वह चर्खा चलाता है। घरमें उसने चर्खे लाकर रख दिये हैं। अपने खेतमें उसने थोड़ी रूई बोना प्रारम्भ कर लिया है। रूईमें अच्छी आमदनी है। घरमें चर्खे चलें तो बाजारसे कपड़े नहीं लेने पड़ते। पड़ोसियोंने यह झटपट अनुभव कर लिया है। उसके गाँवके किसान अब रूई बोने लगे हैं। उसे अब एक घण्टे रोज उन लोगोंको चर्खा चलाना सिखाना पड़ता है, जो उसके पास बड़े आग्रहसे सीखने आते हैं।

कभी-कभी वह आसपासकी गलियाँ झाड़ देता है। गाँवमें लोग पता नहीं; क्यों उसका सम्मान करने लगे हैं। सम्भवतः इसलिये कि नित्य सायंकाल वह पीपलके नीचे बैठकर लोगोंको रामायण सुनाता है। लोगोंको कहता है—'तुम अपने आप पढ़ो तो कितना आनन्द आये। यह तो रामजीकी कथा है।' बड़े-बूढ़े भी अब उससे क, ख पढ़ते हैं। भोजनके बाद रात्रिमें उसकी पाठशाला लगती है। अब लोग इधर-उधर कूड़ा डालते डरने लगे हैं—'पाँड़ेजी यहाँ कूड़ा देखेंगे तो झाड़ू लेकर जुट पड़ेंगे' उसका पूरा गाँव सदा स्वच्छ रहता है।

वह सबेरे एक मील जाकर गंगा-स्नान करता है। सन्ध्या करता है। गीताका पाठ करता है। गाँवके युवक और बालक तो क्या तरुण और वृद्ध भी इस प्रयत्नमें रहते हैं कि पाँड़ेजी कहीं स्नान करने पहले न निकल जायँ। 'देखा-देखी पाप, देखा-देखी पुण्य' सो गाँवमें तो जैसे अब सभी गंगास्नान, सन्ध्या, पूजा करनेवाले हो गये हैं। जो गीता-पाठ नहीं कर सकते वे रामायण या हनुमानचालीसा ही लेकर शंकरजीको सुना आते हैं। स्त्रियोंकी चर्चा मत कीजिये, उनमें तो पहलेसे सृष्टिकर्ताने श्रद्धा बाँटते समय बड़ा भाग दे रखा है। अब तो गाँवके हलवाहेतक पहले स्नान करके सूर्यभगवान्‌को एक लोटा जल चढ़ाते हैं और तब मुँहमें दाना डालते हैं।

जहाँ चार बर्तन होते हैं, वहाँ खनकते भी हैं। गाँवमें झगड़े भी होते हैं। कचहरीकी बात बहुत दूर चली गयी। पाँड़ेजीके पास भी बहुत कम झगड़े आते हैं। बहुत-से झगड़ोंका निपटारा तो इतनेमें हो जाता है—'चल, पाँड़ेजीके पास चलता हूँ।'

'भैया रहने दो! अब पाँड़ेजीके यहाँ ले जाकर क्यों लज्जित करते हो। तुम्हीं जो कहो सो कर दूँ।'

क्यों पाँड़ेजीका गाँवमें इतना भय, इतना सम्मान, इतनी पूछ है, पाँड़ेजी भी नहीं जानते। वे न नेता हैं, न वक्ता। वे तो बोलनेमें भी शब्दकी कृपणता करते हैं. उन्हें अपने घरके काम, अपनी पूजा-पाठसे अवकाश ही नहीं कि समाजकी सेवा करें। यह रामायण सुनाना, लोगोंको दो अक्षर पढ़ा देना, किसीके झगड़े निपटा देना—यह तो मनुष्यका कर्तव्य है। मनुष्य अपने पड़ोसीकी सहायता नहीं करेगा तो क्या पशु आयेगा उसकी सहायता करने?

× × ×

[३]

'कितने स्वयंसेवक हैं आपके यहाँ?' उन्होंने पूछा। आज इधर आनेपर उन्हें अपने विद्यापीठके सहपाठीका स्मरण हो आया था। वे मिलने चले आये थे। यह गाँव, यहाँकी स्वच्छता, यहाँके लोगोंकी तत्परता देखकर वे चकित रह गये थे। पूरा गाँव उनके स्वागतमें जैसे खड़ा था, लेकिन वे यह जानते हैं कि उनके आनेका किसीको पता नहीं था। उनका आना सहसा हुआ है। उनके स्वागतके लिये यहाँ कोई तैयारी हुई हो, ऐसा सम्भव नहीं है।

'हम सभी स्वयंसेवक ही हैं।' पाँड़ेजीने छोटा-सा उत्तर दिया। 'मेरा मतलब ऐसे स्वयंसेवकोंसे है, जो बराबर यहीं रहते हों। आश्रमका काम करते हों।' उन्होंने फिर पूछा।

'ऐसा तो यहाँ कोई नहीं है।' पाँड़ेजी इतना कहकर चुप हो जानेवाले थे; किंतु उन्होंने देखा कि उनकी बात इस प्रकार समझी नहीं जा सकेगी। उन्होंने स्पष्ट किया—'यह आश्रम नहीं है, यह तो एक सज्जनने अपना खाली मकान पूरे गाँवको दे दिया है। अब आसपासके गाँवके लोग भी चर्खा चलाना सीखने आने लगे हैं। कुछ लोग पढ़ने भी आते हैं। यहाँ यह सुविधा है कि चर्खे रख दिये गये हैं। हममेंसे जिसे अवकाश मिलता है, यहीं आकर बैठता है। अपना सूत भी कातता है, सीखनेवालोंको सिखाता भी है। वैसे तो यह हमारी रात्रिपाठशाला, पंचायत, अतिथिशाला और जो भी सामूहिक काम आ पड़े—सबका स्थान है। हम सब अपने-अपने घरका काम करते हैं और घड़ी-दो-घड़ी यहाँ भी आकर बैठते हैं। गाँवका काम तो एक दूसरेकी सहायतासे सदासे ही चलता आया है।'

'कोई स्वयंसेवक नहीं, कोई नेता नहीं।' एक बार उन्होंने चारों ओर देखा। अपने मनमें ही वे कह रहे थे—'बापूकी बातका मर्म तो पाँड़ेने समझा, लगता है। इतना स्वच्छ, इतना अनुशासित, इतना व्यवस्थित ग्राम तो मैं अबतक दूसरा नहीं देख सका हूँ।'

'यहाँके लोग आपकी ही नकल करते हैं?' थोड़ी देर पीछे उन्होंने बात चलते हुए पूछ लिया था। वैसे उनका मन कहता था—'पाँड़ेकी नकल पूरा देश करने लग जाय तो बापूका स्वप्न आज ही सत्य हो जाय।'

'नहीं तो!' पाँड़ेने सिर हिला दिया। 'अच्छे काम लोग समझकर करें, यह कुछ नकल नहीं है। मेरी नकल भी कुछ होती है; पर बहुत थोड़ी। एकाध लोग ही मेरी भाँति घुटे-सिर रहते हैं। दो-चार ही मेरी भाँति गुमसुम बने रहते हैं।'

पाँड़े क्या उत्तर देते हैं, इसके बदले उनका ध्यान लोगोंकी ओर अधिक था। उनके नेत्र चारों ओर घूम रहे थे। जहाँ पहुँचना, वहाँकी अधिक-से-अधिक परिस्थितिको समझ लेनेके वे पुराने अभ्यासी हैं। उनके नेत्रोंको छोटी-छोटी बातोंके निरीक्षणका अभ्यास है। लेकिन यहाँ उन्हें आश्चर्य हो रहा है—'कोई पाँड़ेकी त्रुटियोंकी नकल करता उन्हें नहीं लगता। पाँड़े चलनेमें आगे झुककर चलते हैं, उनके कुर्तेकी दो-एक बटन टूटी ही रहती हैं, बोलते समय वे प्राय: अपने बायें हाथकी अँगुलियाँ समेटकर मुट्ठी बना लेते हैं, लेकिन दूसरोंमें उन्हें तो कोई नहीं दीखता, जिसमें ये बातें आयी हों। लोग पाँड़ेको कितना सम्मान देते हैं, यह तो वे देख रहे हैं; परंतु उनकी त्रुटियाँ व्यापक नहीं हुईं, इसका कारण? यह कारण उनकी समझमें आ नहीं रहा है।'

'यहाँ और भी कुछ देखनेयोग्य है?' गाँव तो पाँड़ेने उन्हें दिखा ही दिया है। दो दिन यहाँ रहनेकी उनकी इच्छा है। दिनभर कोई बैठे-बैठे ऊब जाय और घूमना-फिरना चाहे, यह बहुत स्वाभाविक है।

'एक मन्दिर है; किंतु दर्शन करनेका आपमें उत्साह नहीं होगा, यह जानता हूँ। गाँवका साधारण-सा मन्दिर है।' पाँड़ेजीने कुछ सोचकर कहा—'थोड़ी दूर गंगा-किनारे एक अच्छे संतकी कुटी है।'

'सन्ध्या-समय टहलना भी हो जायगा गंगा-किनारे और संतके दर्शन भी।' एक समाजसेवी विख्यात पुरुषमें साधुके दर्शनकी इच्छा होगी, यह पाँड़ेको अद्भुत लगा। गाँववालोंको इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं जान पड़ी। वे ऐसे वातावरणमें रहते हैं कि वहाँ साधुके दर्शनकी इच्छा न होना ही आश्चर्यकी बात मानी जाती है।

× × ×

[४]

'वह गैयाका गोबर उठा तो लाओ! एक अंजली तो होगा ही।' भारतके साधु ऐसे बेढंगे होते हैं कि बात मत पूछिये। न जान न पहचान, एक दूध-सी उजली खादी पहने कोई भला आदमी दर्शन करने आया तो उसे प्रणाम करके बैठते-न-बैठते गोबर उठा लानेकी आज्ञा दे दी गयी!

'आप बैठिये!' पाँड़ेने उन्हें रोका और स्वयं उठने लगे। 'उन्हें ही जाने दो भाई! वह तो गायका पवित्र गोबर है!' साधु महाराजने पाँड़ेको रोक दिया।

'हमें स्वच्छता करने और कूड़ा उठानेका अभ्यास है।' वे हँसकर उठे। इतने ग्रामीण लोगोंके सामने साधुकी बात न मानना उचित नहीं जान पड़ा। गायका गीला गोबर था। कुर्तेको ऊपर चढ़ाकर किसी प्रकार उठा लिया उन्होंने उसे। हाथकी अंजली कपड़ेसे दूर किये, बहुत सम्हलते हुए चले आये किसी प्रकार। भले उन्होंने ग्रामोंकी सफाईमें थोड़ा-बहुत भाग लिया हो, भले टोकरी भरते और उठाते समयके उनके चित्र समाचारपत्रोंने छापे हों; किंतु उनकी एक-एक अंग-भंगी कह रही थी—'कितना गन्दा, कितना उलझनभरा काम है यह।'

'यहीं रख दो! साधुने कह दिया। उन्होंने गोबर गिरा दिया; किंतु उनकी हथेलियाँ भर गयी थीं। वे हाथ धोना चाहते थे।' इसी समय दूसरी आज्ञा मिली—'वह पुस्तक उठा लाओ और तनिक पोंछ दो उसे।'

'मैं हाथ धो लूँ।' उन्होंने देख लिया था कि पाँड़ेजी कुएँसे पानी ले आ रहे हैं।

'हाथ पीछे धो लेना।' साधुने कहा—'पहले पुस्तक साफ करके दे दो।'

'महाराज! पुस्तकमें गोबर लग जायगा। वह एकदम गन्दी हो जायगी।' उन्हें लगा कि साधु बूटी छानते होंगे।

'एक छोटी-सी पुस्तक उठाने और स्वच्छ करनेमें तो तुम पहले अपने हाथकी ओर देखते हो और इतने बड़े समाजके दोषको दूर करने चलते हो, समाजसेवामें लगते हो तो अपनी ओर देखते ही नहीं हो।' साधुने गम्भीरतासे कहा—'तुम्हारे हाथमें गोबर लगा है तो जिन-जिन पुस्तकोंको तुम छूओगे, वे मैली होती जायँगी। तुम्हारे भीतर बुराई है तो तुम समाजमें अपना क्षेत्र जितना बढ़ाओगे, उसमें उतनी ही बुराई फैलाते चलोगे।'

वे उस दिन साधुके पाससे गाँवमें आये और गाँवसे भी लौट आये हैं; किंतु उनके कानोंमें साधुके शब्द अब भी गूँजते हैं—'पहले अपने दोष दूर करो, तब समाजके दोष दूर करने चलो। जो निर्दोष नहीं, वह समाज-सेवा करने जाकर समाजका अहित ही करेगा। समाजमें अपनी बुराइयाँ बाँटेगा।'

मित्र कहते हैं—'उन्होंने अपना मान खो दिया, लेकिन अब उनसे व्याख्यान नहीं दिये जाते। अब तो वे एकान्तमें आ गये हैं। वे अपने भीतर देखनेमें लगे हैं आजकल। वे समाजकी सेवामें अभी ही ठीक लग पाये हैं' यह बात क्या ठीक नहीं है?

साधनोपयोगी पत्र

(१)

जो कुछ है, सब भगवान्‌का है

सम्मान्य महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र प्राप्त हुआ। आपने जो लिखा, उसके उत्तरमें क्या लिखा जाय? मनुष्य यदि दूसरेके दुःखको अपना दुःख मानने लगे तो जगत्‌का बहुत-सा दुःख दूर हो जाय, परंतु इधर मनुष्यकी उदासीनता ही है, बल्कि आजके जगत्‌में तो हम बहुत-से लोग दूसरेके दुःखको अपना सुख बनाते हैं। यह बड़ी दयनीय स्थिति है! सच तो यह है कि मनुष्यके पास जो कुछ है, वह सारा-का-सारा प्रभुका है और प्रभुकी सेवाके लिये है। उसे वह यदि अपना मानता है तो सचमुच बेईमान और चोर है। श्रीमद्भागवतमें स्पष्ट आया है कि 'जितनेसे पेट भरे, उतनेपर ही अपना अधिकार है। उससे अधिकपर अधिकार माननेवाला चोर है और उसे दण्ड मिलना चाहिये।' यह भागवतके सातवें स्कन्धमें नारदजीका वचन है। आपसे मेरा यही निवेदन है कि आपके पास धन, बल, विद्या, बुद्धि—जो कुछ भी है, अगर आप अपना कल्याण चाहते हैं तो उसे भगवान्‌का और भगवान्‌की सेवाके लिये ही मिला हुआ मानिये और उसे भगवान्‌की सेवामें ही समर्पित कर दीजिये। उसपरसे अपना अधिकार हटाकर उसे भगवान्‌का बना दीजिये तथा प्राणि-पदार्थोंपरसे अपनी ममता हटाकर ममता एकमात्र श्रीभगवान्‌में ही कीजिये, आपको अवश्य शान्ति मिलेगी। सांसारिक पदार्थोंमें न तो किसीको आजतक शान्ति मिली और न मिल सकती है—यह ध्रुव सत्य है। जितना ही सांसारिक वैभव बढ़ेगा, उतनी ही चिन्ताकी ज्वाला बढ़ेगी तथा आप उसमें झुलसते रहियेगा। शान्ति-सुख केवल भगवच्चरणारविन्दमें ही है और कहीं नहीं। उन्हींका आश्रय लीजिये और उन्हींमें ममता कीजिये। इसके सिवा और कुछ भी शान्तिका साधन नहीं है। शेष भगवत्कृपा।

(२)

आर्त-प्रार्थना करो

प्रिय भाई! सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारे दुःखसे मुझे भी बड़ा दुःख है। मैं चाहता हूँ, तुम दुःखसे मुक्त हो जाओ, परंतु यह मेरे हाथकी बात नहीं है। तुम्हारे सद्भावके प्रति मेरे मनमें बड़ा आदर है, परंतु मैं तुम्हें यह विश्वास कभी नहीं दिला सकता कि 'मैं ऐसा कोई चमत्कार कर दूँगा, जिससे रातों-रात तुम्हारा संकट टल जायगा और तुम अपने मनोरथके अनुसार उच्च स्थितिको प्राप्त हो जाओगे।' कोई यदि किसीको ऐसा विश्वास दिलाता है कि 'मैं जादूकी तरह तुम्हारी स्थिति बदल दूँगा तो वह या तो स्वयं भ्रममें है या ठग है।'

इसका यह तात्पर्य नहीं कि महात्मा पुरुषोंमें ऐसी क्षमता होती ही नहीं। होती है, पर वैसे पुरुष संसारमें इस समय बहुत थोड़े हैं और कोई हैं तो वे भगवान्‌के मंगलमय विधानको बदलनेका आग्रह नहीं करते। वे भगवान्‌के मंगलमय विधानमें विश्वास करते हैं और वे इस बातको भलीभाँति जानते हैं कि यहाँका हानि-लाभ वास्तवमें हानि-लाभ है ही नहीं। वे महापुरुष जिस स्तरपर रहते हैं, उस स्तरसे यहाँके समस्त परिवर्तनोंमें उन्हें भगवान्‌की लीला-माधुरी दिखायी देती है। उसमें न दुःख है, न शोक, न विनाश है, न हानि है—है केवल विविध विचित्र भंगिमाओंमें भगवान्‌का आत्मप्रकाश, उनका लीलाविलास। ऐसी अवस्थामें वे कौन-सी हानिको लाभमें परिवर्तित करने जायँगे। उनको तो प्रत्येक स्थितिमें भगवान्‌के मधुर पद-निक्षेपसे झंकृत मधुर नुपुरोंकी ध्वनि सुनायी देती है। अतएव उन महापुरुषोंके द्वारा पारमार्थिक कल्याणके सिवा लौकिक लाभकी आशा नहीं रखनी चाहिये। तुम स्वयं भी ऐसा ही कहा करते हो, परंतु तुम्हारा भी दोष क्या है। बुद्धिमें अभीतक विषय-सुखका विश्वास बना हुआ है और

हृदयमें मान-प्रतिष्ठा, नामकी इज्जत, शरीरके आराम और बहुत ऊँचे स्टाइलपर रहनेकी कामना प्रबल है। इसीसे तुम जब अनुचित साधनोंसे भी संकट टालने और सुख प्राप्त करनेकी बात सोचते हो, तब किसी महात्माके द्वारा काम हो जाय तो बड़ा उत्तम है—यह सोचना स्वाभाविक ही है, परंतु न तो मैं महात्मा हूँ और न मेरी दृष्टिमें ऐसे कोई महात्मा ही हैं, जिनका नाम तुम्हें बता सकूँ या जिनसे तुम्हारे लिये मैं अनुरोध कर सकूँ। यह मैंने तुमको स्पष्ट इसलिये लिखा है कि इस झूठी आशाके कारण तुमको दुखी न होना पड़े।

मेरा यह निश्चित विश्वास है कि जबतक मनुष्य संसारके प्राणि-पदार्थोंसे सुखकी आशा रखता है और अनुकूल रूपसे उनकी प्राप्तिके लिये प्रयत्नशील रहता है, तबतक उसे सुख-शान्ति मिल ही नहीं सकती। संसारमें संसारके पदार्थोंको लेकर आजतक न तो कोई सुखी हुआ है, न हो सकता है। तथापि जबतक यह सत्य मनुष्यकी समझमें नहीं आता, तबतक उसे अनुकूल स्थितिकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करना ही पड़ता है। परंतु कम-से-कम यह प्रयत्न ऐसा तो होना चाहिये, जो नयी दुर्गतिका कारण न बने। वह निर्दोष प्रयत्न है—एकनिष्ठ होकर भगवान्‌से प्रार्थना करना, जैसे द्रौपदी, गजराज आदिने की थी। मेरी तुच्छ बुद्धिके अनुसार भगवान्‌से प्रार्थना करनेवालेकी दुर्गति होती ही नहीं, उसकी अभीष्ट सिद्धि भी सहज ही हो सकती है; अथवा भगवान्‌की कृपासे उसका हृदय ही विषय-कामनाकी गन्दगीसे शुद्ध हो जा सकता है। अतएव भैया! तुम कातर हृदयसे विश्वासपूर्वक आर्त-प्रार्थना करो। इससे अच्छी सलाह मैं और दे ही नहीं सकता; क्योंकि मुझे इससे अच्छे किसी साधनकी न तो जानकारी है और न मेरा विश्वास ही है।

यह निश्चय रखना चाहिये कि भगवान् मंगलमय हैं, अतएव उनका प्रत्येक विधान भी मंगलमय है। यदि वे समझेंगे कि अमुक स्थितिकी प्राप्ति होनेपर हमारा अकल्याण होगा तो हमारे चाहने और प्रार्थना करनेपर भी वे उस स्थितिकी प्राप्ति नहीं होने देंगे और वास्तवमें उसीमें हमारा कल्याण भी होगा।

तुम्हारे संकटसे नहीं, परंतु तुम्हारे इस संकटजनित मानस-दु:खको देखकर कई बार मेरे चित्तमें बड़ी उद्विग्नता हो जाती है, पर फिर जब मंगलमय भगवान्‌की सहज सुहृदताका ध्यान आता है, तब यह जानकर सन्तोष हो जाता है कि वे तुम्हारा अमंगल तो होने देंगे ही नहीं, वे जो कुछ भी विधान करेंगे, वह प्रतिकूल दीखनेपर भी परिणाममें होगा तो मंगल करनेवाला ही।

घबराओ मत, प्रभुकी कृपापर विश्वास करो और जहाँतक बने, असत्-पथका आश्रय न लेकर विपत्तिनाशके लिये भगवान्‌से आर्त-प्रार्थना करो। भगवान् तुम्हारा मंगल करेंगे। शेष भगवत्कृपा।

आवरणचित्र-परिचय

[श्रीभरतजीद्वारा श्रीरामचरणपादुकाओंका पूजन]

राम पेम भाजन भरतु बड़े न एहिं करतूति।
चातक हंस सराहिअत टेंक बिबेक बिभूति॥
देह दिनहुँ दिन दूबरि होई। घटइ तेजु बलु मुखछबि सोई॥
नित नव राम प्रेम पनु पीना। बढ़त धरम दलु मनु न मलीना॥
जिमि जलु निघटत सरद प्रकासे। बिलसत बेतस बनज बिकासे॥
सम दम संजम नियम उपासा। नखत भरत हिय बिमल अकासा॥
ध्रुव बिस्वासु अवधि राका सी। स्वामि सुरति सुरबीथि बिकासी॥
राम पेम बिधु अचल अदोषा। सहित समाज सोह नित चोखा॥
भरत रहनि समुझनि करतूती। भगति बिरति गुन बिमल बिभूती॥
बरनत सकल सुकबि सकुचाहीं। सेस गनेस गिरा गमु नाहीं॥
नित पूजत प्रभु पाँवरी प्रीति न हृदयँ समाति।
मागि मागि आयसु करत राज काज बहु भाँति॥

[श्रीरामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड]

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७२, शक १९३७, सन् २०१५, सूर्य उत्तरायण, वसन्त-ग्रीष्म-ऋतु, ज्येष्ठ कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें ९।१ बजेतक	मंगल	विशाखा दिनमें ११।१४ बजेतक	५ मई	× × ×
द्वितीया ,, ९। ९ बजेतक	बुध	अनुराधा ,, ११।५९ बजेतक	६ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ८। ५८ बजेसे, **मूल** दिनमें ११। ५९ बजेसे।
तृतीया ,, ८। ४७ बजेतक	गुरु	ज्येष्ठा ,, १२। १५ बजेतक	७ ,,	**भद्रा** दिनमें ८। ४७ बजेतक, **धनुराशि** दिनमें १२। १५ बजेसे, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ९। २९ बजे।
चतुर्थी ,, ७। ५५ बजेतक	शुक्र	मूल ,, १२। १ बजेतक	८ ,,	**मूल** दिनमें १२। १ बजेतक।
पंचमी प्रात: ६। ३७ बजेतक षष्ठी रात्रिशेष ४।५८ बजेतक	शनि	पू० षा० ,, ११। २३ बजेतक	९ ,,	**भद्रा** रात्रिशेष ४। ५८ बजेसे, **मकरराशि** सायं ५। ८ बजेसे।
सप्तमी रात्रिमें २।५९ बजेतक	रवि	उ० षा० ,, १०। २५ बजेतक	१० ,,	**भद्रा** दिनमें ३। ५९ बजेतक, **भानुसप्तमीपर्व।**
अष्टमी ,, १२। ४७ बजेतक	सोम	श्रवण ,, ९। ९ बजेतक	११ ,,	**कुम्भराशि** रात्रिमें ८। २५ बजेसे, **कृत्तिकाका सूर्य** रात्रिमें २। ४० बजे, **पंचकारम्भ** रात्रिमें ८। २५ बजे।
नवमी ,, १०। २५ बजेतक	मंगल	धनिष्ठा ,, ७। ४० बजेतक	१२ ,,	× × ×
दशमी रात्रिमें ७। ५७ बजेतक	बुध	शतभिषा प्रात: ६। २ बजेतक पू०भा० रात्रिशेष ४। २२ बजेतक	१३ ,,	**भद्रा** दिनमें ९। १० बजेसे रात्रिमें ७। ५७ बजेतक, **मीनराशि** रात्रिमें १०। ४७ बजेसे।
एकादशी सायं ५। ३० बजेतक	गुरु	उ० भा० रात्रिमें २। ४४ बजेतक	१४ ,,	**अचला एकादशीव्रत** (सबका), **मूल** रात्रिमें २। ४४ बजेसे।
द्वादशी दिनमें ३। ७ बजेतक	शुक्र	रेवती ,, १। १३ बजेतक	१५ ,,	**मेषराशि** रात्रिमें १। १३ बजेसे, **प्रदोषव्रत, वृष संक्रान्ति** दिनमें १। ४८ बजे, **ग्रीष्म-ऋतु प्रारम्भ, पंचक समाप्त** रात्रिमें १। १३ बजे।
त्रयोदशी ,, १२। ५४ बजेतक	शनि	अश्विनी ,, ११। ५३ बजेतक	१६ ,,	**भद्रा** दिनमें १२। ५४ बजेसे रात्रिमें ११। ५५ बजेतक, **मूल** रात्रिमें ११। ५३ बजेतक।
चतुर्दशी ,, १०। ५४ बजेतक	रवि	भरणी ,, १०। ५० बजेतक	१७ ,,	**वृषराशि** रात्रिमें ४। ३९ बजेसे, **श्राद्धकी अमावस्या, वटसावित्रीव्रत।**
अमावस्या ,, ९। १४ बजेतक	सोम	कृत्तिका ,, १०। ७ बजेतक	१८ ,,	**सोमवती अमावस्या।**

सं० २०७२, शक १९३७, सन् २०१५, सूर्य उत्तरायण, ग्रीष्म-ऋतु, ज्येष्ठ शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें ७। ५६ बजेतक	मंगल	रोहिणी रात्रिमें ९। ४८ बजेतक	१९ मई	**करवीरव्रत।**
द्वितीया ,, ७। ४ बजेतक	बुध	मृगशिरा ,, ९। ५७ बजेतक	२० ,,	**मिथुनराशि** दिनमें ९। ५३ बजेसे।
तृतीया प्रात: ६। ४० बजेतक	गुरु	आर्द्रा ,, १०। ३६ बजेतक	२१ ,,	**भद्रा** सायं ६। ४४ बजेसे, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, सायन मिथुनका सूर्य** सायं ६। २५ बजे।
चतुर्थी ,, ६। ४८ बजेतक	शुक्र	पुनर्वसु ,, ११। ४५ बजेतक	२२ ,,	**भद्रा** प्रात: ६। ४८ बजेतक, **कर्कराशि** सायं ५। २८ बजेसे।
पंचमी दिनमें ७। २७ बजेतक	शनि	पुष्य ,, १। २१ बजेतक	२३ ,,	**मूल** रात्रिमें १। २१ बजेसे, **श्रीस्कन्दषष्ठीव्रत।**
षष्ठी ,, ८। ३४ बजेतक	रवि	आश्लेषा ,, ३। २६ बजेतक	२४ ,,	**सिंहराशि** रात्रिमें ३। २६ बजेसे।
सप्तमी ,, १०। ६ बजेतक	सोम	मघा अहोरात्र	२५ ,,	**भद्रा दिनमें १०। ६ बजेसे रात्रिमें ११। २ बजेतक, रोहिणीका सूर्य** रात्रिमें १२। ३ बजेसे।
अष्टमी ,, ११। ५८ बजेतक	मंगल	मघा प्रात: ५। ४८ बजेतक	२६ ,,	**मूल** प्रात: ५। ४८ बजेतक।
नवमी ,, १। ५९ बजेतक	बुध	पू० फा० दिनमें ८। २२ बजेतक	२७ ,,	**कन्याराशि** दिनमें ३। २ बजेसे।
दशमी ,, ४। ० बजेतक	गुरु	उ० फा० ,, ११। ० बजेतक	२८ ,,	**भद्रा** रात्रिशेष ४। ५५ बजेसे, **गंगादशहरा।**
एकादशी सायं ५। ५१ बजेतक	शुक्र	हस्त ,, १। २९ बजेतक	२९ ,,	**भद्रा** सायं ५। ५१ बजेतक, **तुलाराशि** रात्रिमें २। ३६ बजेसे, **निर्जला एकादशीव्रत** (सबका), **भीमसेनी एकादशीव्रत।**
द्वादशी रात्रिमें ७। २३ बजेतक	शनि	चित्रा ,, ३। ४२ बजेतक	३० ,,	**श्रीकूर्म-जयन्ती।**
त्रयोदशी ,, ८। २९ बजेतक	रवि	स्वाती सायं ,, ५। ३२ बजेतक	३१ ,,	**प्रदोषव्रत।**
चतुर्दशी ,, ९। १० बजेतक	सोम	विशाखा ,, ६। ५५ बजेतक	१ जून	**भद्रा** रात्रिमें ९। १० बजेसे, **वृश्चिकराशि** दिनमें १२। ३४ बजेसे।
पूर्णिमा ,, ९। १८ बजेतक	मंगल	अनुराधा रात्रिमें ७। ४७ बजेतक	२ ,,	**भद्रा** दिनमें ९। १४ बजेतक, **पूर्णिमा, मूल** रात्रिमें ७। ४७ बजेसे।

कृपानुभूति

'रक्षा करी बिहारी ने...'

घटना लगभग चालीस वर्ष पूर्वकी है। मेरे पूज्य पिताजी स्वभावत: बहुत ही सरल प्रकृति एवं धर्मानुरागी थे। उनके इष्ट परमब्रह्म श्रीकृष्ण एवं श्रीश्रीराधाजी थे। वृन्दावनधामके प्रति उनका विशेष लगाव था। एक बार वे अपने घर किशनगंज-बिहारसे वृन्दावन जानेके क्रममें बनारस अपने रिश्तेदारके घर पहुँचे, वहाँ उनकी अपनी पुत्री (मेरी दीदी), जो कि अपनी ननदके घर आयी हुईं थीं, से भेंट हो गयी तो दीदीकी ननदने पिताजीके सामने प्रस्ताव रखा कि आप अपने साथ अपनी पुत्री एवं दो नतिनियोंको भी वृन्दावनधामका दर्शन करा दें; क्योंकि ऐसे इन लोगोंका जाना शायद ही कभी हो पायेगा। पिताजीने अपनी सहर्ष सहमति दे दी। दूसरे दिन दीदी अपनी दोनों पुत्रियोंको जो उस समय पाँच से सात वर्षकी रही होगीं, के साथ वृन्दावनके लिये रवाना हो गयीं।

सन्ध्याके समय वृन्दावन पहुँचकर वे लोग स्टेशनसे रिक्शेद्वारा किसी धर्मशालामें रुकनेके लिये जा रहे थे कि सामनेकी ओरसे तेज गतिसे आता हुआ एक ट्रक उनके रिक्शेको ठोकर मारता हुआ चला गया। ट्रकके धक्केसे क्षतिग्रस्त रिक्शा एवं रिक्शाचालक दूर फैंका गया तथा सड़कके एक ओर दीदी अपनी दोनों बच्चियोंके साथ पड़ी थीं तो दूसरी ओर पिताजी गिरे पड़े थे। पिताजीको गिरते वक्त घुटनेमें शायद कोई कंकड़ चुभ गया था, जिससे उनका घुटना लहूलुहान हो गया था। दीदीने अपनी दोनों बच्चियोंको झाड़-पोंछकर गोदमें उठाया और पिताजीके पास आकर उनकी स्थितिको देखकर वे बहुत घबरा गयीं और मन-ही-मन बाँकेबिहारीसे प्रार्थना करने लगीं कि हे प्रभु! अनजान जगह एवं इस विकट स्थितिमें हमलोगोंकी सहायता करो। तत्क्षण विपरीत दिशासे साइकिलसे एक युवक आया, उसने आते ही एक रिक्शा रोककर पिताजीको सहारा देकर रिक्शेमें बैठाया, उसके बाद दीदी भी अपनी दोनों बच्चियोंके साथ रिक्शेमें सामानके साथ बैठ गयीं। उस युवकने सर्वप्रथम पिताजीको एक क्लीनिकमें ले जाकर मरहम-पट्टी कराया तथा दवाई, इन्जेक्शन वगैरह भी दिलवाया तथा पिताजी एवं दीदीसे कहा कि चाचाजी जख्मी हैं तथा इन्हें बुखार भी हो गया है और रात्रिका समय है, आप लोग मेरे घर चलकर आराम कीजिये, सुबह ठीक होनेपर चले जाइयेगा। सहमति पाकर वह युवक उन लोगोंको अपने घरपर ले गया। अपने घर पहुँचनेपर उसने सारा वृतान्त अपनी पत्नी एवं माता-पिताको बताया। उस लड़केने अपना कमरा मेरे पिताजी एवं दीदी तथा बच्चोंके लिये छोड़ दिया तथा खुद पत्नी, बच्चोंके साथ बरामदेमें सोनेकी व्यवस्था की। उसकी माताजीने घरका दूध एवं खाना परोस दिया। मेरे पिताजीको बुखार चढ़ गया था। इसलिये दीदीने उनके सिरमें जल-पट्टी देना शुरू किया, ताकि बुखार कम हो जाय।

अर्धरात्रिके पश्चात् उस कमरेमें दीदीको भौंरेके गुंजनकी आवाज सुनायी देने लगी, पर इधर-उधर देखनेपर भौंरा कहीं भी दिखा नहीं, अचानक उसी गुंजनसे स्पष्टरूपसे एक आवाज आयी कि तुम्हारे पिताजीका एक ग्रह कट चुका है तथा एक और घटित होनेवाला है, उसके बाद सब ठीक होगा। प्रात:काल पिताजीका बुखार उतर गया था, इसलिये पिताजीने उन लोगोंको धन्यवाद देकर किसी धर्मशालामें ठहरनेके लिये प्रस्थान किया। पुन: दूसरे दिन पिताजी और दीदी बच्चोंके साथ बरसाना, गोकुलके लिये रवाना हुए। सफरके क्रममें बस एक पड़ावपर रुकी तो पिताजी बससे उतरकर लघुशंकाको गये तथा वापस आकर वहीं ट्यूबवेलमें हाथ धोने लगे। तत्क्षण पता नहीं कहाँसे एक साँड़ दौड़ता हुआ आया और अपनी सींगोंसे पिताजीको पटकता हुआ चला गया। संयोगसे पिताजीको कोई गम्भीर चोट नहीं आयी सिर्फ कीचड़में गिरनेके कारण उनकी धोती एवं कमीज गन्दी हो गयी, जिसे अन्य यात्रियोंने पानीसे साफ कर दिया।

इस घटनाके तीस वर्षोंके बाद पिताजीका गोलोक-वास हुआ। इस घटनाकी चर्चा पिताजी हमेशा करते-रहते थे एवं उनकी इच्छा थी कि कल्याणमें इसका प्रकाशन हो। शास्त्रोंमें ठीक ही कहा गया है कि परमपिता अपने आश्रित भक्तोंकी रक्षा बड़ी तत्परतासे करते हैं।

बोलो बृन्दाबन बिहारीलाल की जय।
श्री श्री राधारानी की जय॥

—विष्णुप्रसाद गुप्त

पढ़ो, समझो और करो

(१)

एक मुसलिम बन्धुकी मानवीयता

हमारे देशमें प्राय: धर्म, भाषा, जाति आदिके नामपर झगड़े एवं विवाद होते रहते हैं। उस समय हमारे मनमें यह प्रश्न उठता है कि यदि हम इस प्रकारकी संकीर्ण मानसिकतासे ऊपर उठकर केवल इंसानियतको महत्त्व दें तो ये झगड़े एवं विवाद कभी न हों। वास्तवमें इंसानियत ही वह भावना है, जो मानवको तथा समाजके विभिन्न वर्गोंको परस्पर भाईचारेकी भावनासे जोड़ती है।

मेरे जीवनकी भी एक स्मरणीय घटना है, जो मानवीय भावनाको उजागर करती है। उन सज्जनके प्रति मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने मेरी परेशानीके समय मेरी सहायता की थी। यह बात सन् १९९०-९१ ई० की है, मैं BHEL हरिद्वारमें सर्विस कर रही थी। मेरी पुत्रीका B.Ed. के लिये खुरजामें सेलेक्शन हो गया था। मुझे उसके एडमिशनके लिये अकेले बेटीके साथ खुरजा जाना पड़ा। मेरे लिये खुरजा बिलकुल अनजाना शहर था। खुरजा पहुँचकर मुझे मालूम हुआ कि बी०एच०ई०एल० की ही दो और लड़कियोंका यहाँ एडमिशन हुआ है। अत: मैं हरिद्वार वापस आनेपर उन बच्चियोंके माता-पितासे मिली। मुझे इस बातकी विशेष खुशी थी कि मेरी बेटीको वहाँ अकेले नहीं रहना पड़ेगा। उनसे मालूम हुआ कि उन लड़कियोंके माता-पिताने रहनेके लिये एक कमरेके मकानका प्रबन्ध कर दिया है, जो उन्हींके किसी परिचितका मकान था। मैंने अपनी पुत्रीके लिये उन्हीं लड़कियोंके साथ रहनेकी व्यवस्था कर दी। तीनों लड़कियोंके एक साथ रहनेसे मैं भी बेफिक्र हो गयी, परंतु दो महीनेमें ही मुझे विदित हुआ कि उन बच्चियोंके पिताने अपने किसी सोर्सद्वारा उनका खुरजासे रुड़की ट्रॉन्सफर करवा लिया है तथा वे दोनों लड़कियाँ शीघ्र ही रुड़की कॉलेज ज्वाइन कर लेगीं। मैं यह जानकर अत्यन्त चिन्तामें पड़ गयी कि मेरी बेटी वहाँ अकेली कमरेमें किस प्रकार रहेगी। मैं दोनों लड़कियोंके पितासे मिली। उन्होंने मुझे खुरजाके एक मुसलिम परिवारसे मिलनेकी सलाह दी। मैं खुरजा जाकर उन सज्जनसे. जो पेशेसे वकील थे, मिली तथा उनको अपनी समस्या बतायी, उन्होंने मुझे एवं मेरी बेटीको अपने श्वसुरजीसे मिलवाया तथा उन्होंने मेरी सारी बात अत्यन्त सहानुभूतिपूर्वक सुनी। वकील साहबने भी अपने श्वसुरजीसे मेरी बेटीके रुड़की-स्थानान्तरणके सम्बन्धमें विशेष प्रयास करनेके लिये कहा; क्योंकि वकील साहबके श्वसुरजीके रुड़की कॉलेज के रजिस्ट्रारसे काफी घनिष्ठ सम्बन्ध थे। उन्होंने मुझे यह कहकर पूरी तरहसे आश्वस्त किया कि आपकी बेटी मेरी बेटी-जैसी है। आप बिलकुल निश्चिन्त होकर हरिद्वार जाइये। आपकी परिस्थितिसे मुझे पूरी तरह सहानुभूति है। उनके इन सान्त्वनापूर्ण शब्दोंसे आश्वस्त होकर मैं हरिद्वार वापस आ गयी। खुरजासे चलते समय वकीलसाहबने भी मुझे विश्वास दिलाया कि अब आपका कार्य अवश्य हो जायगा।

सच मानिये, अगले १५-२० दिनोंमें मेरी बेटीका रुड़की ट्रॉन्सफरके लिये आर्डर आ गया तथा मेरी बेटीने भी हरिद्वार आकर रुड़की कॉलेज ज्वाइन कर लिया। इस प्रकार उन वकील साहब तथा उनके श्वसुरकी सहायतासे मेरी चिन्ता दूर हुई। आज भी जब मैं याद करती हूँ तो उनके सहानुभूतिपूर्ण शब्द मेरी स्मृतिमें तैरने लगते हैं। उसके बाद मेरा खुरजा कभी जाना नहीं हुआ, न कभी उन सज्जनसे मिलना हुआ, परंतु मैं सदैव उनके प्रति आभारी रहूँगी। वास्तवमें यदि इंसान जाति, धर्म एवं भाषाके भेद-भावकी संकीर्ण मानसिकतासे ऊपर उठकर मानवताको ही सर्वोपरि समझे तो यह धरती स्वर्ग-जैसी हो जाय।—**आशा भटनागर**

(२)

वह अविस्मरणीय सदाशयता

घटनाको घटे लगभग चौंतीस साल बीत गये, पर सरदारजीकी वह सदाशयता आज भी मेरे मानस-पटलसे नहीं उतरती। उस समय मेरी स्थिति उस व्यक्तिके समान थी, जो प्याससे अत्यन्त आकुल होकर भी जिस-तिससे दो घूँट जलकी याचना करनेमें भी संकुचित हो रहा हो और अचानक कोई अपरिचित आकर शीतल जल लाकर कहे—'महाशय! यह शीतल जल ग्रहण करें।'

यह वह समय था, जब मैं अपने पुत्रको आर्ट्स कॉलेजमें प्रवेश दिलाने अपने गाँवसे ३०० किलोमीटर दूर चण्डीगढ़ गया था। कॉलेज-कार्यालयमें पहुँचकर आवश्यक कागजात

अधिकारी महोदयके सम्मुख पेश किये। कुछ देर उन कागजोंपर दृष्टि घुमाकर वे बोले—'उम्मीदवारका फोटो?'

मैंने बच्चेका फोटो दिया, जिसे देखते ही अधिकारी महोदय बोले—'पर यह प्रमाणित नहीं है। इसे प्रमाणित कराइये और वह भी किसी सक्षम अधिकारीसे।' उस अपरिचित स्थानमें मैं अपना परिचित सक्षम अधिकारी कहाँसे लाता? अत: मैंने उन्हीं अधिकारीसे अपनी लाचारी जताते हुए फोटोको प्रमाणित करनेकी विनती की और कहा—फोटो और अभ्यर्थी आपके सामने हैं, पर उन्होंने स्पष्टत: अपनी विवशता जताते हुए फोटोको प्रमाणित करनेसे साफ मना कर दिया।

हम दोनों बड़े परेशान! करें तो क्या करें? प्रवेशका आज अन्तिम दिन, घर जाकर फोटो प्रमाणित करानेका समय भी नहीं। दैवयोगसे उसी समय एक सरदारजी अपने पुत्रको प्रवेश दिलाने वहीं आये हुए थे। वे यह देख रहे थे। वे किसी कॉलेजके प्रिंसिपल थे। उन्होंने हमारी हालत समझी और उसी समय बच्चेकी फोटो प्रमाणित कर दी। उनके अत्यन्त उदारभावके प्रति मैंने कृतज्ञता प्रकट की और प्रवेश-फार्म यह कहते हुए प्रस्तुत कर दिया कि 'अब तो ठीक है न?'

अधिकारी महोदयने मुझसे कहा—यह तो ठीक है, परंतु आप तो सर्विस करते हैं न?

'जी!'

'तो आप अपनी आयका प्रमाणित प्रमाणपत्र भी दीजिये'—यह सुनकर तो मेरे पैर तलेकी जमीन ही खिसक गयी। एकदम निराश स्वरमें आह निकली—'अब क्या होगा?' व्यक्तिको सामने देखकर तो फोटोको प्रमाणित करना इतना कठिन या जोखिमभरा काम नहीं, पर किसी अपरिचितकी आयको कोई कैसे प्रमाणित करे? मैं हतप्रभ! अधिकारी महोदयको अपनी विवशता समझानेका भरसक प्रयास किया, किंतु सब निरर्थक!

वे प्रिंसिपल महोदय यह सब देख रहे थे, बोले—'हुण की होया?' अब मैं कैसे कहता कि मेरी आयका प्रमाण-पत्र चाहिये। उनके आग्रहपर मैंने अपनी स्थिति स्पष्ट की।

सरदारजीने तत्काल अपने पुत्रसे कहा—'ओ ए! कढ़ मेरी तलवार!' मैं तो 'तलवार' सुनकर डर गया—'पंजाबका यह सरदार क्या करने जा रहा है?' इससे पहले कि मैं उनसे कुछ पूछूँ, उनके सुपुत्रने कॉलेज-प्रिंसिपलकी मुहर उनके हाथमें थमा दी। कहिये, कहाँ क्या प्रमाणित करना है? मैंने उनकी सदाशयताका अत्यन्त उदार रूप देखकर अपनी आयका विवरण उनके सामने संकोच और असीमित आभार प्रकट करते हुए रख दिया। 'आई अटेस्ट दि...' सरदारजी लिख रहे थे और मैं सोच रहा था—एक नितान्त अपरिचितके जोखिमभरे कागजको प्रमाणित करनेवाले ये कितने महान् और नेक इंसान हैं। सरदारजीकी यह सदाशयता क्या कभी भूली जा सकती है?—**महावीरप्रसाद अग्रवाल**

(३)

पशु-पक्षी भी समझते हैं प्रेमकी भाषा

मेरे मित्र बिरजूके पास एक तोता था। बिरजू और बिरजूकी माँको समय काटनेका एक अच्छा साधन मिल गया, पहले तो वह गली-मोहल्ले-मन्दिरका एकाध चक्कर लगा लिया करती थी, किंतु तोतेके आनेके बाद उसका सारा समय तोतेके पास ही व्यतीत होने लगा। वह नियमसे पुराने टूथ-ब्रशसे पिंजरेकी सफाई करती। तोतेको दुलराती, उससे बातें करती और उसको गीत सुनाया करती। वह उसकी कटोरीको साफ करके उसमें ताजा जल भरती। दूसरी कटोरीमें भीगी चनेकी दाल, हरी मिर्च, अमरूद, चीकूके टुकड़े रखती थी। वह दोपहरको भोजनोपरान्त दरी बिछाकर लेट जाती। तोता उसके पेट, छातीपर बैठकर टें-टें करके उसके प्यारका जवाब देता।

दिन गुजरते गये। रविके रथका पहिया घूमता रहा। जीवनकी डोरको काले-सफेद चूहे कुतरते रहे और बुढ़िया एक दिन गोलोकधाम सिधार गयी।

बुढ़ियाको अपने पास न देखकर तोतेने आसमान सिरपर उठा लिया। जब लोग अर्थी लेकर घरसे निकले तो तोता पिंजरेकी तीलियोंसे सिर टकरा-टकराकर इधर-उधर तड़फड़ाने लगा। घरकी शान्तिके साथ तोता मौन हो गया। तीसरे पहर जब बिरजूकी पत्नीने उसका पिंजरा साफ करके उसमें ताजा पानी भरा, दाल-फल रखे तो तोतेने उनकी ओर देखातक नहीं। दूसरे दिन बिरजूकी पत्नीने पिंजरेमें झाँका तो तोतेके प्राणपखेरू उड़ चुके थे। कटोरियोंका सारा सामान ज्यों-का-त्यों रखा था।

सारे पशु-पक्षी, वृक्ष आदि भी प्रेमके भावको बखूबी समझते हैं। प्रेमको जीवन, परमात्मा, कामधेनु आदि कहा गया है। कैलीफोर्नियाके वनस्पतिशास्त्री लूथर बरबैकने

तो प्रेमके स्पन्दनोंसे एक कँटीले वृक्षको कंटकहीन बना दिया था, वह पौधेके पास बैठकर उससे कहता प्यारे बच्चे, तुम्हें कुछ भी भय नहीं है। तुम्हें रक्षाके लिये काँटोंकी आवश्यकता नहीं है। तुम बेफिक्र रहो, मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा, धीरे-धीरे वह रेगिस्तानी पौधा पूर्णत: कंटकहीन हो गया। चैतन्य महाप्रभुका नृत्य-गायन सुनकर वनके पेड़-पौधे जंगली पशुतक झूमने लगते थे।

—**गोपालकृष्ण जिन्दल**

(४)

कहानी ईमानदारीकी

यह बात सन् १९८४ ई० की है। मेरे साथ दस मित्र माँ वैष्णो देवीके दर्शनके लिये कटरा पहुँचे। कटरामें धर्मशालातक सभीका सामान पहुँचानेके लिये पिट्ठू (सामान ढोनेवाले कुली)-से बात करके पैसा तय किया गया। सभी ११ यात्रियोंका सामान धर्मशालापर आ गया।

अब पिट्ठूकी ईमानदारी देखनेका समय था। पिट्ठूने कहा कि मुझे आपलोगोंके बीच ५०० रुपये किसीके गिरे हुए मिले हैं। कृपया आप लोग आपसमें पूछताछ करके पता लगायें कि वे किसके हैं? पता लगनेपर जिसके थे, वापस किये गये। मेरे साथीको खुशी हुई तथा अपनी खुशीसे १०० रुपये ईनामके रूपमें देनेके लिये कहा। पिट्ठूने कहा मैं १०० रुपये नहीं लूँगा। मुझे मातारानी मेहनतका पैसा बहुत देती हैं। आपलोगोंकी सेवा ईमानदारीसे करता रहूँ, मुझे बस, यही चाहिये।

किसीने सच ही कहा है कि ***'नीयत हो नेक और मीठी हो जुबां भी, ऐसेमें इबादतकी जरूरत नहीं होती।'***—**सन्तकुमार मिश्र**

(५)

मनका रिश्ता

पर+उपकार अर्थात् दूसरोंके लिये नि:स्वार्थ भावसे किया गया कार्य। पर आजके भागते-दौड़ते मशीनी युगमें ये बड़ी बेमानी-सी बात लगती है। आजके व्यस्त जीवनमें स्वयंके साथ ही परिवारकी जिम्मेदारी ही निभा लेना बड़ी बात है। तब परोपकारके लिये किसके पास समय है। साथ ही इस तरहके कार्योंको 'मिडिल क्लॉसकी दकियानूसी' का नाम दिया जायगा।

अपने लिये तो सभी जीते हैं, पर कभी दूसरोंके जीनेमें या दूसरोंके लिये कुछ कर गुजरनेपर एक आत्मिक सुखानुभूति होती है, जिसे सिर्फ महसूस किया जा सकता है। शब्दोंद्वारा उसको व्यक्त नहीं किया जा सकता।

बात साठके दशककी है। तब मैंने आठ या दस कक्षा पास की होगी। हम छुट्टियोंमें अपने तायाजीके घर जाते थे। संयुक्त परिवारकी गरिमासे परिपूर्णता नजर आती थी। वहाँपर मैं मुन्नी बुआ और बसन्ती बुआको हर समय काममें लगे देखती थी। दरअसल ये हमारे दादाजीके गाँवकी थीं और दादाजीने उन्हें अपनी बेटी बना लिया था। बसन्ती बुआ सिलाई करती रहती थी, कभी पेटीकोट तो कभी फ्रॉक। मुन्नी बुआ गेहूँ साफ करतीं, बड़ी-पापड़ बनातीं और आमका खट्टा-मीठा अचार डालतीं। पर इन सब कामोंको करते-करते कभी भी थकान या खीझकी रेखा उनके चेहरेपर नहीं दिखती थी। दोनों ही गाँवके स्कूलमें शिक्षिका थीं, सो छुट्टियोंमें आकर सारा काम अपने कन्धोंपर ले लेती थीं। आर्थिक तंगीके कारण कभी राजगिरके लड्डू या रस्कके पैकेट लाकर, हम बच्चोंको बड़े प्यारसे देती थीं।

शादी-ब्याहके सारी रीति-रिवाजोंको करानेके साथ ही सारी जिम्मेदारीका बोझ अपने कन्धोंपर उठाकर बखूबी कामको सुखद अंजामतक देतीं। सबको अपना बनाकर उनके छोटे-छोटे कामोंकी प्रशंसा करनेकी आदत जो उन दोनोंमें थी, बहुत कम देखनेको मिलती है। वे सदा हरे या नीले किनारेकी सफेद साड़ी पहनती थीं और उनके सिरपर आँचल हमेशा चिपका रहता; मानो फेविकोलसे चिपका दिया गया हो। पर उस सादगीमें एक सौम्यता हमेशा झलकती थी। कोई अपने शाही पहनावे एवं रहन-सहनके कारण मेरु नहीं हो जाता, बल्कि अपने गुणोंसे ही वह महान् बनता है। सच तो यह है कि जहाँ अपनापन महसूस होता है, वहाँ उत्साह अपने-आप ही आ जाता है। उन दोनों मुँहबोली बुआओंने सगी बुआसे ज्यादा अपनापन दिया। वास्तवमें रिश्ता सिर्फ खूनका ही नहीं, मनका भी रिश्ता होता है। मन जिसे अपना मान ले, वह अपना हो जाता है। दादाजीने उन्हें बेटी माना और उन्होंने हमें भतीजियाँ। हर-एकका अपनी जानसे ज्यादा ध्यान रखकर उन्होंने इस रिश्तेको कभी कलंकित नहीं होने दिया।—**अपराजिता**

मनन करने योग्य

[सत्संगका प्रसाद]

बीसवीं शताब्दीकी घटना है। एक बड़े शहरमें एक बड़े प्रतिष्ठित धनी निवास करते थे। उनके चित्तमें बड़ा वैराग्य था, भगवान्‌के भजनमें बड़ी रुचि थी। वे सोचते रहते थे कि कब वह अवसर मिलेगा, जब सबकी चिन्ता छोड़कर मैं भजनमें ही लग जाऊँगा। उनके संतान नहीं थी। एक भतीजा था, जिसके पढ़ाने-लिखानेकी जिम्मेदारी सेठजीपर ही थी। वे उसको योग्य बनाकर भजनमें लगना चाहते थे।

कुछ दिनोंमें पढ़-लिखकर सेठजीका भतीजा योग्य हो गया। सेठजीने व्यापारका सारा काम-काज उसे सँभला दिया और अपना विचार प्रकट किया कि मैं तो अब व्रजमें रहकर भगवान्‌का ही भजन करूँगा। भतीजेने पूछा—'चाचाजी! इस घरमें, व्यापारमें, रुपयेमें और भोगोंमें जो आनन्द है, भजनमें उससे अधिक आनन्द है क्या?' चाचाजीने कहा—'इसमें क्या सन्देह है, बेटा! हमारा व्यापार, भोग और सुख तो अत्यन्त अल्प है। संसारके त्रैकालिक सुखोंको और मोक्ष-सुखको भी यदि एकत्र करके एक पलड़ेपर रखा जाय और दूसरे पलड़ेपर भजनका लेशमात्रका सुख रखा जाय, तो भी वह लेशमात्र सुख ही अधिक होगा और तो क्या कहूँ, बेटा! भजनमें जो दुःख होता है, वह भी संसारके सब सुखोंसे श्रेष्ठ है।' भतीजेने पूछा—'चाचा! जब भजन में इतना सुख है, तब मुझे इस दुःखरूप व्यापारमें लगाकर आप अकेले क्यों उस सुखका उपभोग करने जा रहे हैं? जिसे आप दुःख समझते हैं, उसमें मुझे डाल रहे हैं और आप सुखमें जा रहे हैं। भला, यह कहाँका न्याय है? मैं भी आपके साथ चलूँगा।' चाचाजीने कहा—'बेटा! मैं तो चाहता हूँ कि संसारके सभी लोग भगवान्‌में लग जायँ। मुझे कई बार इस बातका दुःख भी होता है कि लोग ऐसा सुखमय भजन छोड़कर प्रपंचोंमें क्यों फँसते हैं, परंतु संसारका अनुभव किये बिना इसके दुःखोंका ज्ञान नहीं होता। तुम अभी नवयुवक हो। तुम कुछ दिनोंतक संसारके व्यवहारोंमें रहकर इसके सुख-दुःखोंको देख लो, फिर तुम्हारी रुचि हो तो भजनमें लग जाना।' भतीजेने कहा—'चाचाजी! आपकी बात मुझे जँचती नहीं है। में सोचता हूँ कि जिस व्यापार आदिमें लगे रहकर आपने अपनी इतनी आयु बितायी है, उसका अनुभव आपसे अधिक मुझे कब होगा। जब आपका अनुभव इतना प्रत्यक्ष है, मेरी आँखोंके सामने है, तब फिर उसका अनुभव प्राप्त करनेके लिये इतना सुखद भजन छोड़ देना कहाँतक उचित है? इसलिये मैं भजनके लिये अवश्य चलूँगा। आप साथ न रखेंगे तो मैं अकेला ही चला जाऊँगा।'

भतीजेका दृढ़ निश्चय देखकर सेठजीको प्रसन्नता हुई। अपनी सारी सम्पत्तिका उन्होंने ट्रस्ट बना दिया, जिससे दीन-दुखियोंकी सेवा हुआ करे। दोनोंने समस्त वस्तुओंका त्याग करके व्रजकी यात्रा की। रास्तेमें चाचाजीने अपने भतीजेसे बातचीत करते हुए कहा—'बेटा! ऐसी बात नहीं है कि घरमें भगवान्‌का भजन हो ही नहीं सकता, हो तो सकता है, होता है। मेरे सामने संसारके व्यवहार, व्यापारमें बहुत बड़ी कठिनाई थी। आजकल व्यापारकी प्रणाली इतनी कलुषित, इतनी गन्दी हो गयी है कि बड़े-बड़े सत्पुरुषोंका व्यवहार भी पूर्णतः शुद्ध नहीं होता। जहाँ दूसरोंसे सम्बन्ध रखना पड़ता है, वहाँ कुछ-न-कुछ उनके सम्बन्धका ध्यान रखना ही पड़ता है। इसलिये कैसा भी सज्जन क्यों न हो, व्यवहारके क्षेत्रमें उसे विवश होकर अपराध करना पड़ सकता है। अवश्य ही यह व्यापारका दोष नहीं है, किंतु कलियुगमें ऐसे व्यक्तियोंकी ही भरमार है। इसीसे जो लोग अपने ईमान और सच्चाईकी रक्षा करना चाहते हैं, अपने अन्तःकरणको शुद्ध रखना चाहते हैं, वे थोड़े-से-थोड़ा व्यापार करते हैं अथवा उससे बिलकुल अलग

होकर भजन करने लग जाते हैं। वास्तवमें भजन ही सर्वस्व है। भजनके आनन्दके सामने त्रिलोकी तुच्छ है।'

दोनों ही चाचा और भतीजे व्रजमें रहकर भजन करने लगे। सत्संग करते, लीला देखते, जप करते, ध्यान करते और व्रजकी रजमें लोटते। दोनों अलग-अलग विचरण करते, अलग-अलग भिक्षा करते और रातको दूर-दूर रहते। कुछ दिनोंके बाद तो सत्संग करते-करते उनकी बुद्धि इतनी शुद्ध हो गयी कि एकको दूसरेकी याद ही नहीं रहती। कोई कहीं रहकर भजन कर रहा है, तो कोई कहीं। दोनों मस्त थे।

एक दिन बड़ी विचित्र घटना घटित हो गयी। सेठजी जप कर रहे थे। उनके मनमें बार-बार खीर खानेकी इच्छा होने लगी। एक तो यों ही मनुष्यकी इच्छाएँ उसके साथ जोड़ी जाती हैं। दूसरे भजनके समयकी इच्छा तो कल्पवृक्ष के नीचे बैठकर की हुई इच्छाके समान है। भगवान् अपने भक्तकी प्रत्येक इच्छा उचित समझकर पूर्ण करते हैं। थोड़ी ही देरमें एक बारह वर्षकी सीधी-सादी लड़की वहाँ आयी और सेठजीके सामने दूध, चावल और चीनी रख गयी। सेठजीको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे भगवान्की भक्तवत्सलता देखकर मुग्ध तो हुए, परंतु उनकी खीर खानेकी इच्छा अभी मिटी नहीं थी। उन्होंने आग जलाकर खीर पकाना शुरू किया। अब उनके मनमें भतीजेकी याद आने लगी। वे सोचने लगे कि यदि वह भी आ जाता, तो उसे भी खीर मिल जाती। चाचाके स्मरणका प्रभाव भतीजेके चित्तपर पड़ा और वह अपने स्थानसे चलकर सेठजीके पास पहुँचा।

भतीजेकी स्थिति बहुत ऊँची थी, उसमें आत्मबल था। तभी तो वह एक ही दिनमें अपनी सारी सम्पत्ति छोड़ सका था। खीरकी तैयारी देखकर उसने चाचाजीसे सब बात पूछी और उदास हो गया। उसने कहा—'चाचाजी! यदि खीर ही खानी थी, तो घर क्यों छोड़ा? वहीं रहकर जो कुछ बनता भजन करते, दूसरोंको खीर-पूड़ी खिलाते और खुद भी खाते। जिसको छोड़ दिया, उसकी फिर क्या इच्छा? जिसको उगल दिया, उसको फिर खाना यह तो पशुओंका काम है। चाचाजी! आपने सनातन गोस्वामीकी बात तो सुनी ही होगी। वे इतने विरक्त थे कि अपने ठाकुरको भी बाजरेकी सूखी रोटी खिलाते थे। एक दिन ठाकुरजीने उनसे कहा—'भाई! कम-से-कम नमक तो खिलाया करो। सूखी रोटी मेरे मुँहमें गड़ती है।' भगवान्की यह बात सुनकर श्रीसनातन गोस्वामीको बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने कहा—'मेरे चित्तमें स्वादकी वासना होगी, तभी तुम ऐसा कह रहे हो। अन्यथा तुम्हें नमककी क्या आवश्यकता है?' सनातन गोस्वामीकी बात स्मरण करके हमें तो अपनी दशापर बड़ा दुःख हो रहा है। अभी भोगोंकी आसक्ति हमारे चित्तसे मिटी नहीं। इसीसे तरह-तरहके बहाने बनाकर और प्रत्यक्ष भी हम भोग चाहते हैं। न जाने भगवान्की क्या इच्छा है?' भतीजा बोल रहा था और सेठजीकी आँखोंसे आँसू गिर रहे थे। 'यह भी भगवान्की कृपा ही होगी' इतना कहकर वह ध्यानमग्न हो गया।

थोड़ी देरमें वही लड़की, जो खीरका सामान दे गयी थी, आयी। वह कहने लगी—'बाबा! तुम रोते क्यों हो? अबतक तुमने खीर भी नहीं खायी है? ऐसा क्यों? क्या मेरा कोई अपराध था? उस लड़कीकी मधुर वाणी सुनकर दोनोंने आँखें खोलीं तो वह लड़की साधारण नहीं, ज्योर्तिमयी साक्षात् श्रीजी थीं। दोनोंने साष्टांग दण्डवत् करते-न-करते सुना कि श्रीजी कह रही हैं—'यह सब मेरी ही लीला थी। यह व्रजभूमि मेरी भूमि है। यहाँ रहकर तुम करने-न-करनेका अभिमान छोड़ दो। तुम कुछ करते नहीं, कर सकते नहीं। सब मैं करती हूँ। जबतक तुम अपनेको एक भी क्रिया या संकल्पका कर्ता मानोगे, तबतक तुम्हें दुःख होगा। जैसे मैं रखूँ, वैसे रहो। जो कराती हूँ, सो करो। तुम मेरे हो।''

दण्डवत् करके जब उन दोनोंने आँखें खोलीं, तब वहाँसे श्रीजी अन्तर्धान हो चुकी थीं। वे जीवनभर मस्त देखे गये।

पूर्ण गोहत्या-बन्दीकी दिशामें महाराष्ट्रका एक कदम

इधर एक शुभ समाचार प्राप्त हुआ है कि महाराष्ट्रमें गोहत्या पूर्णरूपसे बन्द हो गयी, साथ ही गोवंशके संरक्षण-सम्वर्धनहेतु ५००० एकड़ भूमि चिह्नितकर एक विशेष प्राधिकरण स्थापित करनेका भी प्रस्ताव है। लगभग १९ वर्षपूर्व महाराष्ट्र विधानसभामें पूर्ण गोहत्या-बन्दीका प्रस्ताव पारित हुआ था, जिसपर अबतक राष्ट्रपतिके हस्ताक्षर न होनेके कारण वह पेंडिंग पड़ा था। कुछ लोगोंके प्रयत्नसे अब माननीय राष्ट्रपति महोदयने उसपर अपनी स्वीकृतिके हस्ताक्षर कर दिये हैं और यह कानून महाराष्ट्रमें लागू हो गया है। अब प्रदेशमें गोहत्या करनेवालेको अधिकतम दस वर्षके सश्रम कारावासकी सजा होगी। महाराष्ट्रकी जनता, वहाँकी सरकार और हमारे माननीय राष्ट्रपति इसके लिये बधाईके पात्र हैं। अभी-अभी समाचार मिला है कि हरियाणा विधानसभाने भी पूर्ण गोहत्या-बन्दीका प्रस्ताव पारित किया है, यह शुभ संकेत है।

भारत स्वतन्त्र होनेके बादसे इस शताब्दीके जिन सन्त-महात्मा, मनीषी और आध्यात्मिक पुरुषोंने भारत-भूमिमें जन्म लिया, उन सबने एक स्वरसे कहा कि भारत-जैसे पवित्र देशमें गोरक्त गिरना, इस देश और इस देशकी संस्कृतिके लिये एक महान् कलंककी बात है। महात्मा गांधी, संत विनोबा भावे, ब्रह्मलीन स्वामी करपात्रीजी, माँ आनन्दमयी, श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी आदि संत-महापुरुषोंने जीवनपर्यन्त गोवधका विरोध किया तथा सत्याग्रह-आन्दोलन भी किये।

यद्यपि कुछ प्रदेश-सरकारोंने आंशिक रूपसे गोहत्या-बन्दीके प्रस्ताव पारित भी कर रखे हैं, परंतु वे कानून एक तो अधूरे हैं तथा जो बने हैं—उनका भी कार्यान्वयन पूरी तरह नहीं होता। भारतमें जितने प्रदेश हैं, उनमें गोहत्याके सन्दर्भमें निम्न स्थिति प्रतीत होती है—

(१) उत्तरपूर्वी प्रदेशोंमें मेघालय, अरुणाचल प्रदेश, मणिपुर, सिक्किम, नागालैण्ड आदिमें गोहत्याकी खुली छूट है अर्थात् किसी प्रकारका प्रतिबन्ध नहीं है।

(२) केरलमें गोहत्या-बन्दीका कोई कानून नहीं है, केवल केविएट अर्थात् पूर्व सूचनाका प्रावधान है।

(३) तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल और असम आदि प्रदेशोंमें सर्टिफिकेट (प्रमाण-पत्र)-के साथ गोहत्याकी अनुमति प्राप्त हो जाती है।

(४) आन्ध्रप्रदेश, तेलंगाना, बिहार, गोवा और उड़ीसा आदि प्रदेशोंमें यद्यपि गोहत्यापर कहनेके लिये प्रतिबन्ध तो है, पर यह आंशिक है, कारण बैल, साँड़ आदि अन्य गोवंशकी सर्टिफिकेटके आधारपर हत्याकी अनुमति प्राप्त हो जाती है।

इसके अतिरिक्त कुछ प्रदेशोंमें गोहत्या-बन्दीके कानून पारित हैं। निम्न चित्रमें उपर्युक्त तथ्योंको दर्शाया गया है—

['द हिन्दू' से साभार]

उपर्युक्त स्थितिको देखते हुए यह बात समझमें आती है कि गोहत्या-बन्दीके एक सुदृढ़ केन्द्रीय कानूनको बनाये बिना सम्पूर्ण भारतसे गोहत्याका कलंक मिट नहीं सकता। यद्यपि तत्कालमें केन्द्रीय कानून बनानेमें कुछ संवैधानिक अड़चनें हो सकती हैं, परंतु वर्तमान सरकारको कटिबद्ध होकर अड़चनोंको दूर करनेका प्रयत्न करते हुए पूर्ण गोहत्या-बन्दीका एक सुदृढ़ केन्द्रीय कानून बनानेका दृढ़ निश्चय कर लेना चाहिये, तभी भारतमें गोहत्याका यह कलंक मिट सकेगा।

भगवत्कृपासे वर्तमान सरकारको यह सामर्थ्य प्राप्त है कि वह दृढ़ निश्चयकर कटिबद्ध होकर इस कार्यको सम्पन्न कर सकती है। परमात्मप्रभुसे प्रार्थना है कि भारतके कर्णधारोंको सद्बुद्धि, सामर्थ्य और शक्ति प्रदान करें, जिससे यह शुभ कार्य यथाशीघ्र सम्पन्न हो सके।

—राधेश्याम खेमका

गीताप्रेससे प्रकाशित १७ महापुराण

कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹
1897	श्रीमद्देवीभागवत महापुराण (मतान्तरसे) सटीक	
1898	,, ,, ,, ,, ,, ,,	४००
26,27	श्रीमद्भागवत-महापुराण ,,	५००
557	श्रीमत्स्यमहापुराण ,,	२७०
48	श्रीविष्णुपुराण ,,	१४०
1432	श्रीवामनपुराण ,,	१२५
1131	श्रीकूर्मपुराण ,,	१४०
1932	श्रीलिङ्गमहापुराण	२००
	केवल हिन्दीमें	
1362	श्रीअग्निपुराण—सम्पूर्ण (श्लोकाङ्कसहित)	२००
789	संक्षिप्त श्रीशिवपुराण—मोटा टाइप	२००
44	संक्षिप्त पद्मपुराण	२५०
1183	संक्षिप्त श्रीनारदपुराण	२००
279	संक्षिप्त श्रीस्कन्दपुराण	३२५
1111	संक्षिप्त ब्रह्मपुराण	१२०
539	संक्षिप्त श्रीमार्कण्डेयपुराण	९०
1189	संक्षिप्त श्रीगरुडपुराण	१६०
1361	संक्षिप्त श्रीवराहपुराण	१००
631	संक्षिप्त श्रीब्रह्मवैवर्तपुराण	२००
584	संक्षिप्त श्रीभविष्यपुराण	१५०

नोट— गीताप्रेससे प्रकाशित संक्षिप्त पुराण सम्पूर्ण पुराणके हिन्दी भाषामें भावानुवाद हैं। केवल कुछ विस्तृत प्रसंगोंको संक्षिप्त किया गया हो सकता है। १८ में ब्रह्माण्डपुराण गीताप्रेससे नहीं छपा है।

ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय (सेठजी) श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके कुछ लोककल्याणकारी पत्रोंके संग्रह

ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके द्वारा अपने परिचितों, मित्रों एवं अन्य लोगोंके लौकिक तथा पारलौकिक समस्याके समाधानके लिये लिखे गये इन पत्रोंके संग्रहमें ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, चेतावनी, भजन, सत्संग, सेवा आदिकी महत्ताका प्रतिपादन, संसारकी नश्वरता, आत्मज्ञान आदि अनेक कल्याणकारी विषयोंका सुन्दर विवेचन है। ये पत्र कर्तव्य-कर्म एवं परमार्थमार्गका ज्ञान करानेमें सच्चे सहायक हैं।

कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹
277	**उद्धार कैसे हो ?** (५१ पत्रोंका संग्रह)	१०
278	**सच्ची सलाह** (८० पत्रोंका संग्रह)	१२
280	**साधनोपयोगी पत्र** (७२ पत्रोंका संग्रह)	१०
281	**शिक्षाप्रद पत्र** (७० पत्रोंका संग्रह)	१५
282	**पारमार्थिक पत्र** (९१ पत्रोंका संग्रह)	१५
284	**अध्यात्मविषयक पत्र** (५४ पत्रोंका संग्रह)	१२

नित्यलीलालीन (भाईजी) श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके कुछ महत्त्वपूर्ण पत्रोंके संग्रह

श्रद्धेय भाईजीके द्वारा अपने परिचितों तथा मित्रोंको लिखे गये इन पत्रोंके संग्रहमें व्यावहारिक परिष्कार, कर्तव्य, साधन, जप, ध्यान, साधनात्मक समाधान, नाम-निष्ठा, सेवाका रहस्य, दु:खकी निवृत्तिका उपाय, पाप-पुण्यकी परिभाषा आदि विभिन्न विषयोंकी सरल व्याख्या है।

कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹
353	**लोक-परलोक-सुधार**—(६८ पत्रोंका संग्रह)	२०
354	**आनन्दका स्वरूप**—६५ पत्रोंका संग्रह	२०
355	**महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर**—९३ पत्रोंका संग्रह	३०
356	**शान्ति कैसे मिले ?**—९४ पत्रोंका संग्रह	२५
357	**दु:ख क्यों होते हैं ?**—८५ पत्रोंका संग्रह	२५

अगर किसी पाठकको आध्यात्मिक जिज्ञासा है तो वह इमेल gita.kalyan@yahoo.in पर सम्पर्क कर सकते हैं। कल्याण मासिक पत्रकी सदस्यतासे सम्बन्धित पत्राचार इ-मेल kalyan@gitapress.org पर करें।

प्र० ति० २०-३-२०१५
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR–13/2014–2016
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2014–2016

'कल्याण' के ग्राहकोंसे नम्र निवेदन

'कल्याण' वर्ष ८९ (जनवरी २०१५) का विशेषाङ्क—'**सेवा-अङ्क**' हेतु जिन ग्राहकोंसे सदस्यता-शुल्क प्राप्त हुआ उन सभीको उक्त अङ्क रजिस्टर्ड डाकसे प्रेषित किया गया है। जिनका सदस्यता-शुल्क समयपर प्राप्त नहीं हो सका उन्हें वी०पी०पी०से विशेषाङ्क प्रेषित किया गया है। यदि किसीको भी अभीतक विशेषाङ्क प्राप्त नहीं हो पाया है तो उन्हें अपने डाकघरमें जाकर पता लगाना चाहिये। जिन ग्राहकोंको बिना वी०पी०पी० छुड़ाये फरवरी माहका अङ्क प्राप्त हो गया है उनसे निवेदन है कि सदस्यता जारी रखने हेतु सदस्यता-शुल्क शीघ्र भेजना चाहिये। सूचना देकर पुनः वी०पी०से भी मँगाया जा सकता है।

व्यवस्थापक—**कल्याण कार्यालय, गीताप्रेस—२७३००५ (गोरखपुर) (उ० प्र०)**

अप्रैल २०१४ से मार्च २०१५ तक प्रकाशित नवीन प्रकाशन

कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹
2019	**आदर्श देशभक्त**-चित्रकथा	२५	1986	**आदर्श-ऋषि-मुनि—**			**तेलुगु**	
2022	**आदर्श सम्राट्** ,,	२५		ग्रन्थाकार, रंगीन	२५	1754	**लक्ष्मीसहस्रनाम**	६
2026	**आदर्श संत** ,,	२५	1992	**हिन्दी-अंग्रेजी वर्णमाला**	३०	985	**एक लोटा पानी**	२०
2028	**आदर्श सुधारक** ,,	२५	1993	**सचित्र श्रीदुर्गाचालीसा एवं**		1995	**अष्टादशशक्ति**	
2025	**गीता हिन्दी-संस्कृत**-पाकेट	१५		**विन्ध्येश्वरीचालीसा** (वि०सं०)	१०		**पीठाल महिमा**	१५
2024	**श्रीगणेशस्तोत्ररत्नाकर**	३५	1985	**लिंगमहापुराण**—सटीक	२००	986	**विदुरनीति**	१५
2021	**श्रीपुरुषोत्तमसहस्रनामस्तोत्रम्**	१०	2027	**भगवत्प्राप्तिकी अमूल्य बातें**	१२	987	**श्रीदुर्गासप्तशती**—सटीक	४०
2020	**शिवमहापुराण मूलमात्रम्**	२५०	2002	**आध्यात्मिक कहानियाँ**	२०	990	**कठोपनिषद् शांकरभाष्य**	३०
1980	**ज्योतिषतत्त्वाङ्क**	१३०	2003	**शक्तिपीठ-दर्शन**	२०		**कन्नड़**	
1947	**भक्तमाल-अङ्क**	१३०	2001	**विदुरनीति**—अंग्रेजी	२०	1989	**श्रीमद्देवीभागवतपुराण**	२००
1991	**श्रीदुर्गाचालीसा एवं**			**मराठी**		1994	**शिवमहिम्नस्तोत्र**	५
	विन्ध्येश्वरीचालीसा		1983	**श्रीरामविजय**	१००		**तमिल**	
	लाल रंगमें (विशिष्ट सं०)	५		**गुजराती**		1998	**ललितासहस्रनाम**	१२
1979	**हनुमानचालीसा**—सचित्र		1987	**अच्छे बनो**	८	1999	**विदुरनीति**	१२
	(विशिष्ट संस्करण)	१०	1988	**कल्याण कैसे हो?**	१५		**बँगला**	
1997	,, **सचित्र** (खड़िआ, लघु)		2023	**जीवनचर्या-विज्ञान**	४०	1996	**स्तुति**	१२५
	(विशिष्ट संस्करण)	५		**असमिया**				
1990	**भगवन्नाम माहात्म्य**	१०	1984	**भजगोविन्दम्**	३			

भजन-सुधा (पुस्तकाकार) सजिल्द (कोड 1783)—प्रस्तुत पुस्तक ४१९ भजनोंका अनुपम संग्रह है। इसमें गणेश, शिव, भगवान् विष्णु, भगवान् राम, श्रीकृष्ण, देवीके विभिन्न-भजन तथा श्रीहनुमानजीके भजन दिये गये हैं। प्रत्येक देवताके भजनके प्रारम्भमें संस्कृतमें उनके स्तोत्र भी संग्रहीत हैं। विभिन्न रागोंमें निबद्ध प्राचीन एवं अर्वाचीन संतों तथा मारवाड़ी भाषाके विभिन्न भजनोंका यह संग्रह सबके लिये उपयोगी है। मूल्य ₹ ६०